Brown Book

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182707
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.08/B57S Accession No. G.H.1406

Author भाटी, नारायणसिंह।

Title सांझ। 1954

This book should be returned on or before the date last marked below.

राजस्थानी भाषा का एक प्रकृति काव्य

सांझ

[हिन्दी भावानुवाद सहित]

नारायणसिंह भाटी

सर्वाधिकार लेखक के सुरक्षित

मूल्य : दो रुपये

पुस्तक संख्या : १

पीथल प्रकासण

पैलो फाल़

सम्पादक

कोमल कोठारी : विजयदान देथा

कचहरी रोड - जोधपुर

प्रकाशक :
पीथल प्रकाशन
कचहरी रोड , जोधपुर

प्रथम संस्करण
नवम्बर १९५४

मुद्रक :
भँवर रामदत्त थानवी
सुमेर प्रिंटिंग प्रेस
खोजती गेट , जोधपुर

श्री भैरूसिंह खेजड़ला ग्रन्थमाला : १

*

● राजस्थानी का प्राचीन साहित्य तो समय समय पर कई विभिन्न स्थानों से योग्य विद्वानों के द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित होता रहा है, परन्तु राजस्थानी के आधुनिक नवीनतम साहित्य की कोई भी सुव्यवस्थित प्रकाशन योजना नहीं है। नवीन साहित्य की प्रकाशन-सुविधाओं का अभाव ही राजस्थानी के लिये आत्मघाती बना हुआ है। राजस्थानी के सुरुचिपूर्ण-नवीन साहित्य को एक वैज्ञानिक योजना द्वारा सुन्दर प्रकाशन देना ही 'पीथल प्रकासण' का प्रमुख लक्ष्य है। आधुनिक साहित्य के प्रकाशन की महत्ता को समझते हुए खेजड़ला ठाकुर श्री भैरूसिंहजी ने 'पीथल प्रकासण' के इस शुभ-प्रयोजन को कार्यान्वित रूप से सफल बनाने के लिये दस पुस्तकों का प्रकाशन व्यय देना स्वीकार किया है। पाँच पुस्तकें राजस्थानी के आधुनिक पद्य की होंगी और पाँच पुस्तकें राजस्थानी के आधुनिक गद्य की। 'सांझ' 'पीथल प्रकासण' की पहली पुस्तक है : और 'श्री भैरूसिंह खेजड़ला ग्रन्थमाला' की भी। परन्तु 'पीथल प्रकासण' के अन्तर्गत इस तरह की अन्य ग्रन्थमालाएँ भी प्रकाशित होती रहेंगी। अपनी इस पहली ग्रन्थमाला के लिये 'पीथल प्रकासण' श्री भैरूसिंहजी का हृदय से आभार प्रदर्शित करता है।

व्यवस्थापक

क्रम :

- सांख्य : एक परिचय VII–XV
- सांख्य का हिन्दी भावार्थ २
- सांख्य ३
- टिप्पणियां ८१
- शब्द कोष ८५

* *

सांझ : एक परिचय

जड़, डण्ठल, पत्तों और फूलों का संयोग ही पौधे को एक रूपता प्रदान करता है। इन सभी के एक रसात्मक योग का प्रभाव है—सौरभ ! सांझ के प्रत्येक पद का ऐसा ही अद्वितीय सुरभिमय प्रभाव है। एक सौ पन्द्रह पदों के इस प्रकृति काव्य में कथा का तारतम्य नहीं, समय का अनुक्रम नहीं, स्थल की एकता नहीं, भावों का क्रमशः उत्थान और पतन नहीं—फिर भी 'सांझ' में विषय की एकान्तिक एकता के कारण सम्पूर्ण भावाभिव्यञ्जना एक सुन्दर पुष्प माला की तरह सजाली गई है। यदि कवि किसी कथा के सहारे अपनी बात कहता तो सम्भवतया प्रयोजन में सफलता मिलती किन्तु इस स्वतन्त्र अभिव्यञ्जना में कथा की वर्णनात्मक और घटनात्मक उदासीनता को हटा देने से मन के साथ एक सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया है।

आकाश की स्थिति का सूक्ष्मतम निरीक्षण, उस समय के वातावरण का अपूर्व चित्रण, शाम के समय गाँवों के विभिन्न कार्य व्यापारों का वृहत् उल्लेख, संध्या के समय नियोजित होने वाले गृह कार्य और राजस्थान की ग्रामीण संस्कृति का सांगोपांग दर्शन अपनी सम्पूर्ण पराकाष्ठा को लेकर 'सांझ' में मुखरित हो उठा है। कवि की यह 'सांझ' राजस्थान के गाँवों की सांझ है। आकाश की लाली और गाँवों की ठोस जमीन के बीच संध्या के समय जो कुछ शुभ और सुन्दर घटित होता है—उसका अनुपमनीय चित्र सा इस 'सांझ' में है। प्रकृति काव्य की

सफल व्यञ्जना में हमेशा यह भय बना रहता है कि यथा-तथ्य का विषयगत वर्णन ही कवि की सीमा न बन जाये। प्रकृति का अन्ध अनुकरण हीन-साहित्य का परिचायक है। चार फूलों के नाम, दो पेड़ों के नाम, नभ और पक्षी की चर्चा कर लेने मात्र से प्रकृति का अपूर्व सौंदर्य स्पष्ट न होकर एक काव्यगत परिपाटी की निर्जीव तालिका मात्र बन जाती है! किन्तु 'सांझ' में इस तालिका का तो प्रश्न ही नहीं, मानवता, समाज, कल्याण-भावना, शक्ति और सौंदर्यानुभूति का ऐसा अपूर्व सम्मिश्रण हुआ है कि यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि कहाँ तो 'सांझ' उपमेय है और कहाँ मानवीयता का आरोपण उपमान है!

अरे थूं बण अेकी इकलांण,
लाई बीती बातां घेर।
याद री जूनी जाजम ढाल,
फिरगी पल भर में चौफेर।

दिन भर के कठिन परिश्रम की थकान संध्या के समय एक श्लथ आलस्य का सहारा चाहती है। 'सांझ' इसीलिए एक एकान्त पूर्ण-भाव लिये हुए संसार को त्राण देने के लिये आती है, लेकिन मनुष्य ज्योंही एकान्त की ओर आता है—उसका मन पुरानी असंख्य स्मृतियों से लबालब भर उठता है। कवि एकान्त और संध्या के इसी कोमल भाव को अपने काव्य में व्यञ्जित करता है। इस पद में यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि कहाँ तो प्रकृति का प्रकृति-रूप में चित्रण हुआ है और कहाँ मनुष्य की एकान्त-भावना और स्मृतियों का सौंदर्य प्रारम्भ हुआ है! 'सांझ' के नभ में जिस प्रकार लालिमा छाई

रहती है उसमें यह निश्चय करना अत्यन्त कठिन होता है कि कहाँ तो नीला नभ समाप्त होता है और किस एक रेखा विशेष से लालिमा आरम्भ होती है ! प्रकृति पर मानवीय भावों और रूपों के आरोपण की यही आदर्श-स्थिति है ।

प्रकृति और मानवीयता का यह नीर-क्षीर मिलन ऊपर से जितना सहज दिखता है वह वास्तव में उतना सरल है नहीं । संसार में सहज ही सबसे कठिन है । सहजता को लेकर मन में अनेकों बार यह प्रश्न उठता है कि शिशु के अलावा और कौन सहज होगा ? लेकिन उसकी सहजता तक जाने के लिये क्या मानसिक अवस्था भी बालक जैसी ही चाहिये ? सम्भवतया नहीं ! उसके लिये तो सूर का मन चाहिये जो बाल्य-सुलभ तो नहीं, किन्तु बाल्य-सुलभ को सुलभ्य अन्धे नयनों से देख सके ! सूर की सहज स्थिति अथाह चिन्तन, भक्ति की अतल गहराई, सीमाहीन एकान्तिक स्नेह और वल्लभीय दार्शनिक सिद्धान्तों का निचोड़ है । अर्थात् सहज का स्थान जटिलताओं के पथ को पार करने के पश्चात ही प्राप्त होता है । 'सांझ' की सहजता भी अनेकों कल्पनाओं और भावनाओं की दुरूहताओं में से उद्-भासित हुई है ।

चूमै गैण कसूंबल आंख ,
पौढ़ती धरणी तणौ लिलाड़ ।
खांखल में चूंधीज्या झांखै ,
भोला पंछी परबत झाड़ ।

गोधूलि बेला में एक ओर धीमा पवन है और दूसरी ओर धूमिल वातावरण ! सारी प्रकृति इस झीनेपन में निस्तब्ध चकित-सी दिखाई देती है । और : उधर दूर क्षितिज पर पृथ्वी

और नभ का लालिमा-मय अनुराग-पूर्ण मिलन हो रहा है। नभ की गहरी लालिमा धीरे धीरे पृथ्वी के मटमैले रंग में परिवर्तित हो जाती है। किन्तु लाल से मटमैले रंग तक का जो विकास क्रम है उसके ठीक बीच की रेखा ही कोमलतम सम्बन्ध की सत्ता है। इसी सम्बन्ध रेखा को कवि ने चुम्बन कहा है—जो न तो लालिमा-मय ही है और न मटमैला-पन ही लिये हुए है किन्तु दोनों से ही उसने कुछ न कुछ तत्व प्राप्त करके अपनी तृतीय शक्ति बनाली है। और चुम्बन में क्या होता है? दो प्रेममय तल्लीनताओं का सम्मिलन ही तो—जो एक दूसरे के संस्पर्श बिना सम्भव नहीं! दोनों सत्ताएँ पृथक रह कर वह सौंदर्य, वह आकर्षण अथवा वह आत्म-समर्पण का भाव अभिव्यक्त नहीं कर सकतीं। किन्तु जिस क्षण वे सत्ताएँ एक दूसरे के निकट हैं—उसी क्षण उनका प्रभाव भी अनुभव होने लगता है। परन्तु यहाँ चुम्बन भी प्रेमी—प्रेमिका का नहीं है—कोई कामातुर अधरों का मिलन नहीं है; नभ की आँख है और पृथ्वी का भाल! इस महा मिलन में श्रद्धाभाव का प्राधान्य है तभी तो पत्ती, पौधे और पेड़ दार्शनिकों की भाँति खड़े हुए झीने प्रकाश के चिन्तन में स्थिर से हो गये हैं! सारे पद की सहजता के पीछे पूरे पुष्ट विचारों की भूमिका है।

'सांझ' में वर्णित पंक्तियों की अभिव्यञ्जना वृक्ष के पत्तों की तरह स्वतः स्फूर्त्त है। संश्लिष्ट प्रकृति वर्णन की पद्धति तो एक दम से असाधारण है। पूरे पद में एक सांगोपांग, सम्पूर्ण चित्र है। किसी भी पंक्ति के किसी भी शब्द में विश्रृंखलता या भावों का लेश मात्र भी अनघड़पन नहीं है। शब्दों का अपूर्व चयन और उनके पारस्परिक संयोग का मधुरतम-ध्वनि सौंदर्य, उपमा का सौंदर्य, कार्य-व्यापारों का सौंदर्य, विरोधाभासी सौंदर्य,

सूक्ष्मतम-निरीक्षण का सौंदर्य, व्यञ्जित भाषा का सौंदर्य, लाक्षणिक प्रयोगों का सौंदर्य आदि कितनी ही सौंदर्य-सत्ताएँ एक साथ 'सांझ' की पंक्तियों में केन्द्रीभूत हो उठी हैं।

जगाणौ उरसां सेज मयंक,
समंदर हिवड़ै लहरां हार।
अरकची आंख झपै आथूंण,
ऊतरै बादलियां सिणगार।

सारे पद में केवल १६ शब्द हैं—किन्तु भावों की व्यापकता कितनी गहरी है ? कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भाव-व्यंजना कवि के शब्द चयन की सार्थकता है। 'र' कार के सहज प्रयोग से सारे पद में गति और वेग उमड़ पड़ा है। शब्दों का पारस्परिक मेल इस सीमा तक सार्थक हो उठा है कि जैसे इस भाव-विशेष को व्यक्त करने के लिये केवल ये ही सोलह शब्द उपयुक्त हैं—एक भी शब्द के घटने बढ़ने से मानो भाव में शैथिल्य प्रवेश कर उठेगा। न इस भाव के लिये दूसरी अभिव्यंजना ही सम्भव हो सकती है—और न इन शब्दों के लिये दूसरा भाव ही सम्भव है। रूप और विषय का यह अविच्छिन्न मेल ही कला की चरम सीमा है।

सांझ का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है—उसका सामाजिक स्वरूप ! कहने को तो सांझ [एक प्राकृतिक व्यापार] का व्यक्ति के जीवन से तो लेन-देन हो सकता है किन्तु समाज के साथ उसका क्या सम्बन्ध ? अवश्य ही कवि ने कुछ खेंचतान की होगी। तभी तो प्रकृति के निरपेक्ष—सौंदर्य वर्णन में समाज भी घसीटता चला आया है। किन्तु 'सांझ' में ऐसी बात नहीं है। वहाँ समाज और सांझ एक दूसरे के पूरक बनकर आये हैं।

प्रकृति के इस सौंदर्य को समझने और मन के भाव–प्रभाव को अभिव्यक्त करने की शक्ति प्रदान करने का श्रेय केवल समाज को है ! समाज ही ने वह शक्ति दी है कि व्यक्ति सांझ को एक मूक पशु–पक्षी की तरह देखकर ही न रह जाय। अपनी मूक-संवेदना को वह ऐसी वाणी भी दे सके जिससे आत्म-तोष भी पाये और अन्य सामाजिक व्यक्ति के मन को भी तोष दे सके। मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियाँ अब प्राकृतिक से कहीं अधिक सामाजिक हो चली हैं। इसलिये समाज के बीच अपना प्राण, जीवन और अपने विचार ग्रहण करने वाले कवि की दृष्टि से देखी हुई यह 'सांझ' कभी भी समाज के इस भारी एहसान से बचकर नहीं निकल सकती। और: विशेषकर समाज के प्रति जागरूक कवि की अनुभूति में तो समाज और प्रकृति एक-रूप होकर ही आते हैं। सांझ के अन्तिम भाग में कवि उससे ही प्रश्न कर बैठता है कि—हे सांझ ! तू दिन भर हमारी इस मानवीय धरती पर भटकती रही है—बता तो सही तूने संसार में क्या खास बात देखी ? तत्कालीन समाज की विषमता की ओर लक्ष्य करती हुई सांझ उत्तर देती है—' यह दुनिया एक विशाल समुद्र के समान है। इसमें एक भयंकर उत्पात मच रहा है। कुछ ही मगरमच्छ ऐसे हैं—जो प्रतिदिन फूलते जा रहे हैं। छोटी छोटी मछलियों को संपूर्ण रूप से वे जिन्दा का जिन्दा ही निगल रहे हैं।' समाज की इस प्राणघाती सच्चाई को कितने पैने और शक्तिशाली शब्दों में व्यक्त किया गया है :

चढ़ै जुग समदर री बौछाल,
जठां सूं डावा डहता जाय।
मायणां गिणिया मगर बटाल,
साबती माछलियां गिट जाय।

कवि आज की वेदनामय सामाजिक स्थिति से अछूता नहीं रह सकता। आज की परिस्थितियों में कानूनी समानता की कितनी ही बातें क्यों न बघारी जाँय—वास्तविकता कौन नहीं जानता ? इसी तथ्य को राजनीति अपने प्रकार से, समाज-शास्त्र अपने तरीके से, मनोविज्ञान अपनी पद्धति से और साहित्य अपनी विशिष्ट अभिव्यक्ति के द्वारा व्यंजित करता है। और यही अपेक्षित है !

प्रकृति मे विकृति देखने का अवसर भी है और सुकृति देखने का भी। सांझ को किसी की हत्या के लाल खून के रूप में भी देखा जा सकता है और अनुराग-पूर्ण नयन के रूप में भी ! सांझ को साड़ी, आंचल, उरोजों और अधरों की वासना युक्त वीथियों में भी फँसाया जा सकता है। सांझ को सांझ न रखकर सामाजिक सुधार का घोषणा-पत्र भी बनाया जा सकता है। सांझ को अन्धकार का अग्रदूत मानकर जीवन की निराशा भी बनाया जा सकता है। कहने का तात्पर्य केवल यही है कि प्रत्येक विकृति को सांझ में स्थान मिल सकता था। किन्तु फिर भी कवि ने उस ओर जाने या अनजाने किसी भी प्रकार का प्रयास क्यों नहीं किया ? सम्भवतया इसीलिये कि उसका मानस स्वस्थ, चिन्तन स्पष्ट, और उसकी भावनाएँ प्रांजल थीं। सशक्त विश्वास की अडिग दृढ़ता के कारण ही यह सब सम्भव हो सका ! तभी तो यहाँ आशा का सन्देश है, जीवन के सशक्त क्षणों का प्राधान्य है, कर्त्तव्य के लिये परोक्ष उत्तेजना है, सौंदर्यानुभूति की नई दृष्टि है—सो भी प्रकृति के एक सुन्दर संधिकाल से व्यग्र-व्यंजना ग्रहण करके !

इन पंक्तियों के लेखकों को सौभाग्य वश 'मालूंगा' गाँव [कवि का गाँव] देखने का अवसर मिला। हमने उनके गाँव

की संध्या को देखा, पहाड़ों को देखा, मैदानों को देखा, पोखरों को देखा, तालाब को देखा, वहाँ के निवासियों को देखा, गाँव की झोपड़ियों को देखा— यह सब कुछ देखने के बाद फिर एक बार ढलते हुए सूरज को देखा—संध्या की लालिमा से आँखें हटा कर फिर गाँव के वातावरण को देखा—झोपड़ियों से उठते धुएँ को देखा- केवल एक ही बात बार बार याद आती रही—कि नारायणसिंह ने सांझ की चोरी की है। और : वह चोरी है उस गाँव के वातावरण की, वहाँ के पहाड़ों की, वहाँ के पोखरों की, गाँव की झोपड़ियों में से उठते हुए धुएँ की—मालूंगा गाँव के संध्या-कालीन विशिष्ट वातावरण की। मतलब कि उनकी 'सांझ' में वह सब कुछ है—जो 'मालूंगा' गाँव के संध्या-कालीन वातावरण में है। पर फिर भी यह कौन सी बात है जो स्थल-विशेष की सांझ होने पर भी यह इस सीमा तक व्यापक सांझ बनने की योग्यता पा सकी! वह बात है—मौलिकता की, सच्चाई की, यथार्थ अनुभूति की जो एक विशिष्ट सांझ से इस प्रकार की गुणात्मक अभिव्यंजनाएँ हृदयंगत कर सकती हैं और जो मानव मात्र के मन में अपनी अनुभूत सांझ का चित्र जगा देती हैं। काच की अलमारी में सजाये हुए बीजों की विश्व-प्रदर्शनी क्या बीज की यथार्थ सार्थकता को चरितार्थ कर सकती है? नहीं! बीज को यदि समग्र ब्रह्मांड में अपने अस्तित्व द्वारा योगदान करना है तो उसे एक स्थल विशेष पर अंकुरित हो कर फलना फूलना होगा—एक स्थल—विशेष पर ही अपनी जड़ें रोपनी होंगी—तभी उसकी प्रस्फुटित हरियाली संपूर्ण विश्व के वातावरण में अपनी सत्ता प्रमाणित कर सकती है! इसी प्राकृतिक नियम के अनुरूप यदि किसी कवि की काव्यकृति को समूचे विश्व की कृति बनना है तो उसे अपने जातीय जीवन,

अपने ही चारों ओर के वातावरण, अपनी ही स्थल-गत विशेषताओं से प्राण संचरित करना होगा। और 'सांझ' के कवि की सफलता का एकमात्र कारण यही है कि उसने अपनी भाषा में काव्य रचना की, उसने अपने विचारों को अपनी भाषा में व्यञ्जित किया, अपने ही चारों ओर के जीवन को अपने काव्य का लक्ष्य बनाया, गाँव में रहने वाले कवि ने गाँव के वातावरण ही को प्रधानता दी! जीवन्त साहित्य, जीवन्त भाषा, जीवन्त शब्द और जीवन्त शैली जन-जीवन के संपर्क से ही अनुप्रेरित होती है। राजस्थान के कवि ने राजस्थान के गाँव की सांझ को दैनन्दिन जीवन में प्रयोग होने वाले शब्दों से, ठेठ राजस्थानी उपमाओं के साज शृंगार से, राजस्थानी भाषा के माधुर्य से विभूषित किया—यह उसकी काव्यमय सफलता का एक बहुत बड़ा श्रेय है।

सम्पादकीय

●

● मनुष्य के स्वरूप को पहिचानना ही साहित्य की यथार्थ सामग्री है।

● साहित्य-सृजन के अन्तराल में जो स्रष्टा रहता है, यदि वह छोटा हुआ तो उसकी सृष्टि भी बड़े होने में बड़ी बाधा पाती है।

शरत् बाबू

सांझ

भावार्थ

● नीली रंगत वाले आसमान में संध्या के आगमन की प्रतीक लम्बी उड़ानें भरते हुए पंछी अपनी सुदूर प्रवास यात्रा से निवृत होकर अपने अपने नीड़ों की ओर वापिस लौटने को उद्यत हो रहे हैं। और उधर पश्चिम दिशा की तरफ ढेरों गुलाल उड़ाई जा रही है। आज की शाम, संध्या सुंदरी इस पृथ्वी पर मेहमान जो है ? ●● झीनी बादलियों के अवगुंठन की तह से झलकती हुई इस लाली के बहाने यह किस दुलहिन का सोहाग मुस्करा रहा है ? बादलों की टुकड़ियों में आलोक की छितराती हुई इस अंतिम किरण की प्रफुल्लित आभा के बहाने क्या किसी के डाबर नयनों [पानी के छोटे छोटे गड्ढों सी बड़ी बड़ी आँखें] से लज्जा तो व्यक्त नहीं हो रही है ? और अवगुंठन के समान उस बदली के चारों ओर की दीप्ति के बहाने क्या किसी की चमकती किनार तो जममगा नहीं रही है ?

सांझ

१

पंखिया परदेसी अजकाय,
आगमै असमांनी असमांन।
उडै कोइ आथूंणी गुलाल,
आई सांझ धरा मिजमांन।

२

हँसै किण बनड़ी तणौ सुहाग?
बादली झीणी घूंघट ओट।
बीखरै डाबर नैणां लाज,
चमक्कै चोखी कोरां गोट।

● सांध्य बाला के पीठ तक लहराते हुए बालों पर स्पष्ट रूप से रात्रि की काली रंगत का प्रभाव लक्षित हो रहा है। इन सांवले बालों में मुखरित हो उठा है - सौंदर्य का नीरव संगीत ! ये बिखरी हुई लटें ऐसी लग रही हैं मानो काले कमलों का सुरभिमय पराग ही गुंथा हुआ हो ! और इन घने बालों की श्यामलता दुलहिन [संध्या] के अक्षय यौवन की घोषणा करती है। ●● संध्या के समय अंतिम किरणों की मिटती हुई चमक कानों में झूमते हुए ओगनियों [कर्णफूल] की स्वर्णिम जगमगाहट के समान है। सांध्य बाला की ये घनी निस्तब्ध भौंहें न जाने किस विस्मृति के असह्य भार से बोझिल हो उठी हैं ? क्या यह सुंदरी हमारी इस मानवीय धरती पर अपना वह अमूल्य हार तो नहीं बिसर गई ? उसी की विकल खोज में वह विलंकृत गले से इधर उधर विहार कर रही है ! ●●● और वह देखो तो संध्या अपने कुंकुम से सुकोमल पैरों को निशंक भाव से बढ़ाती हुई इस ओर आ रही है ! उसे यह नहीं मालूम कि इस दुनिया में सर्वत्र काँटों का जाल बिछा पड़ा है। हलका सा चीर तक उससे नहीं संभलता - उस पर नूपुरों [झिंगुरों की आवाज] का यह असह्य बोझ ?

*

३

लहरै रैरग रंगारगा केस,
जिरग में लुकी रूप री राग।
काजलिया कंवला तरगौ पराग,
बनी रै थिर जोबन रो थाग।

४

चलापल ओगनियां री कोर,
भोपरगां किरग भूला रो भार?
बिहारै गले अडोली नार,
सोधग्रा इरग धरती वो हार!

५

आवै कूंकूं पगल्या मेल,
अठै तौ कांटा रो संसार!
संभै ना थासूं हलको चीर,
जिकरग में रिमझोला रो भार!

● अपने गुलाबी आंचल की ओट से दीपक [चंद्रमा] को छिपाते हुए संध्या इस संसार को देखने के लिये उतर रही है। अपरिचित स्थान की अज्ञात अशंका और झिझक से उसके मन में धड़कन सी पैदा हो रही है। पाँवों की गति कुछ धीमी हो चली है। और : साथ ही नये स्थान को देखने की उत्सुक जिज्ञासा से परिपूर्ण व सुरमे से रंजित उसकी आँखों में एक नैसर्गिक मुस्कान भी व्याप्त हो उठी है। ●● [रात्रि की छोटी बहिन है– यह संध्या ! बड़ी बहिन की अपेक्षा इसमें कौतुहल पूर्ण उत्सुकता की मात्रा अधिक है] अपनी बाल्य सुलभ चंचलता से अनुप्रेरित होकर वह इस पृथ्वी पर आगे आगे चली आ रही है। एक हाथ में उसके चमचमाती हुई राखड़ियों का थाल है और दूसरे में कुंकुम से भरी हुई थाली ! [पर उसकी चपलता इन सबकी क्यों परवाह करने लगी ?] अरी ओ रात की नन्हीं बहिना ! जरा सावधानी बरतो ! देखो तुम्हारा कितना सारा कुंकुम उड़ उड़ कर आकाश में बिखर गया है। थाल को संभालो जरा। ●●● सोहाग की प्रतीक यह मजीठिया [लाल रंग की] ओढ़नी संध्या के लिये एक क्षणिक पहिनावा है–अन्यथा इसके एक छोर पर पक्के काले रंग की पोटली बंधी हुई है ! कौन जानता है कि यह गाँठ अकस्मात किस क्षण खुल पड़े और विभिन्न रंगों [नाना प्रकार की खुशियां] से परिवेष्ठित इस धरती की विभिन्न दृश्यावलियां अपना वास्तविक रंग खो कर इस एक काले रंग [शोक और विषाद का द्योतक] ही में बदल जाँयें !

*

६

लुकाती दिवलौ अंबर ओट,
निरखवा आई ओ संसार।
धड़कती छाती धीमी चाल,
मुलकता नैणां सुरमौ सार।

७

थूं आई थेट धरा आगूंच,
पलकती राखड़ियां भर थाल।
रात री अे नेनकड़ी बैन,
उडै है कूंकूं थाल संभाल।

८

बतावण आंचल रंग मजीठ,
बंधाणौ छेहड़ै कालो रंग।
खुलै कुण जाणै किण पुल गांठ?
हुवै सह धरती - रंग बिरंग।

● दिन भर के मेल मिलाप से सम्पन्न होने के पश्चात् सूरज इस पृथ्वी से विदा हो चुका है। अपनी याद बनी रखने के लिये वह पृथ्वी को 'सांझ' की निशानी सौंप गया है। और आथूण दिशा [पश्चिम] बड़ी सतर्क लाग के साथ इस थाती को संभाल रही है। इस निशानी को उसने अपनी कंचुकी की पीली टुकियों में छिपा रखा है–बिलकुल छाती से चिपटा कर। [इससे विश्वसनीय निरापद जगह और कहाँ मिलेगी?] ●● विभिन्न कार्य कलापों से चंचल, चपल दिन का समस्त वातावरण अपनी इच्छा से रात्रि की निस्तब्ध जड़ता में आत्मसात् हो उठेगा। और दिन का उजाला स्वयं अपनी गति से सरकता हुआ अन्धकार में घुल मिल जायेगा। अपने ही मन की खुशी से मिट जाने की इस अपूर्व बेला में अन्तिम बार सांझ की लौ अपनी समूची शक्ति से भभक उठी है। ●●● दिन के प्रति रात के हृदय में अपार स्नेह है, अनन्त शीतलता है; और रात के अभाव में दिन के वियोग की अन्तर्ज्वाला के ताप की भी कोई सीमा नहीं है! दोनों एक दूसरे से मिलने को विकल हैं। अप्रतिहत गति से अपने प्रियतम को भेंटने के लिये दोनों इस तरह आगे बढ़े, जैसे ढलाई के कारण अपने आप ही फिसल चले हों। परस्पर मिलते ही दोनों अपना निजि अस्तित्व खो बैठे। दिन, दिन नहीं रहा और न रात, रात ही रही। दोनों के आत्मसात् से एक तीसरी ही वस्तु पैदा हो गयी – सांझ!

* * *

सिधायो सूरज धरती छोड,
देख्यौ सेलाणी में सांझ!
करै आथूंण घणी अंधेर,
लुकावै पीला टुकिया मांझ।

१०

अचपलौ दिनड़ौ होसी रात,
चानणौ होसी घोर अन्धार।
कोड री इण मिटवा री वेल,
सांझ रै दिवलै ह्वैगी झाल।

११

मिलण ने आया दिन सूं रात,
पिघलता ढलिया सांझी ढाल।
रह्यौ न दिन दिन, रात न रात,
बिचालै सांझ बणी जंजाल।

● सांझ की निस्तब्ध बेला में आकाश की नीलिमा समुद्र की भाँति स्थिर और प्रशांत हो उठी है। संध्या सुन्दरी इस अनंत समुद्र में नहा धो कर अभी अभी भीगे कपड़ों से बाहर किनारे पर आई है। कहीं कहीं कसूंबल रंग [लाल] के ये छितराये हुए टुकड़े या तो इन भीगे कपड़ों को निचोड़ने से अंकित हुए हैं, या सद्य-स्नाता संध्या के निरुपम सौंदर्य को देखने के लिये अवश देवताओं की उत्तेजित आँखों के अनुराग ही की गुलाबी झाँई इस रूप में प्रतिबिंबित हो उठी है। ●● और किसी एक संध्या में आड़ंग [बरसात होने के पूर्व की गर्मी] के कारण ढलती हुई किरणों से प्रतिभासित बादलों के पीतवर्णा छोटे छोटे टुकड़ों के किनारे पर की यह हलकी सफेदी ऐसी प्रतीत हो रही है, मानो सोने के छोटे छोटे खबोचिये [गड्ढे] चाँदी की पाल से घिरे हुए हों। और कुछ दूरी पर बिखरे हुए बादलों की यह हलकी श्यामलता जैसे ऊबड़-खाबड़ ढाल पर तेजी से उतरती हुई किसी सुन्दरी की काजलदानी से घिरे हुए काजल ही का प्रतिरूप हो! ●●● और कहीं कहीं पश्चिमी किनारे से कुछ ऊपर की ओर दिखाई पड़ने वाली ये नन्हीं नन्हीं मटमैली टुकड़ियाँ ऐसी प्रतीत हो रही हैं, मानो किसी ने बहुत ही चतुराई के साथ आडै छाज में सुगन चिड़ी की पाँखों को उफन कर बिखेर दिया हो। और इन गेरुएँ रंग की लम्बी लम्बी टुकड़ियाँ से सिमटी हुई ये सफेद सी पतली पतली रेखाएँ ऐसी लग रही हैं, मानो सांझ की इस शीतल बेला में बहुत सारे हंस थकावट मिटाने के लिये अपनी शिथिल प्रायः गर्दनों को किनारों पर डाले हुए विश्राम ले रहे हों।

* * *

हुवो थिर समदर आभौ जांण,
कसां में घुलै कसूंबल रंग।
निचोयो सांझ-नार जिमि चीर,
दई कै देवत - नैण सुरंग।

१६

चिलकै सोने रा चीलरिया,
बंधगी बा रूपाली पाल।
कूंपलौ किण रो दुलियौ आज?
गुदलती घण असमांनी ढाल।

१७

ऊफणी आडै छाज कठैक?
उरसां सुगन - चिड़ी री पांख!
गेरुआं तीरां पांण पयाण,
हंसला पौढाणां नस नांख।

● संध्या के समय ढलती हुई किरणों का द्रवित कंपन ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो वे किसी अज्ञात् समुद्र की अतल गहराई में धीरे धीरे डूबती चली जा रही हैं। इस हृदय विदारक दृश्य को देख कर दूर कहीं वृक्ष पर बैठी हुई कोचरी जोर से चीत्कार कर उठी – किस में ऐसा सामर्थ्य है, जो इस विकट स्थिति में इन डूबती हुई किरणों का पहुँचा पकड़ कर इन्हें उबार ले ? ● ● क्षितिज के उस पार नीला आकाश निःसंकोच भाव से सोती हुई पृथ्वी के ललाट को अपनी आँखों से चूम रहा है। क्षितिज रेखा पर की यह लाली इन्हीं अनुरागमयी आँखों की प्रति-छवि है। और गोधूली की इस धूमिल ओट से भोले पंछी, पर्वत और ये झाड़ झंखाड़ इस संयोग को स्तंभित हो कर अपलक भाव से देख रहे हैं। ● ● ● नील गगन सी शय्या पर दिन भर सोते रहने के पश्चात् चंद्रमा अब जाग उठा है। इस अनिवर्चनीय घड़ी में समुद्र का हृदय आनंद से पुलकायमान होकर अपार लहरियों में उमस पड़ा है। पर उधर आधूसा दिशा के पालने में सूर्य की थकी हुई आँखें झपकियां भर रही हैं। इस कारण उदास बादलियों का साज – शृंगार उनसे उतरता चला जा रहा है।

१८

कांपती किरणां बांह पसार,
डूबती जाणै समदर जाय।
अरे कुण पकड़ै पुणाचौ आज?
कोचरी बोली यूं कुरलाय!

१९

चूमै गैण कसूंबल आंख,
पौढ़ती धरणी तणौ लिलाड़।
खाखल में चूंधीज्या झांखै,
भोला पंछी परबत झाड़।

२०

जगाणौ उरसां सेज मयंक,
समंदर हिवड़ै लहरां हार।
अरक ची आंख झपै आथूंण,
उतरै बादलिया सिणगार।

● [प्रकृति का कण कण जैसे चौमासे की संध्या का अभिवादन करता सा जान पड़ता है] सांझ के अतुलनीय सौंदर्य पर कपास के फूल प्रस्फुटित होकर रीझ उठे हैं। संध्या के समय न मुरझाने वाली बेहोंनी [महूड़ा] के छोटे छोटे गुलाबी फूल मानो उसी की प्रतीक्षा में किया गया अपूर्व शृंगार हो ! और वर्षा ऋतु की संध्या के अभिवादन स्वरूप निरुपम हरियाली का मखमल बिछाकर ये रेत के टीबे सांझ के प्रति अपना ममत्व व्यक्त कर रहे हैं। ● ● किसी अनजाने स्थान से स्यारों [एक विशेष जीव] की सरणाती हुई निरंतर आवाज सुनाई पड़ रही है। झाड़ियों में दुबके हुए तीतर तीखी आवाज में बोल रहे हैं – मानो वे बार बार अपनी सीमा के बीच सांझ के समय की इस बसती हुई शून्यता को चुनौती से दे रहे हैं — यहाँ तुम्हारा क्या काम ? किस लिये तुम यहाँ अवतरित हो रही हो ? और : इस तरह इस चुनौती के रूप में वे उस सीमा के प्रति अपनत्व का निबाह कर रहे हैं। ● ● ● और ये घनी सारी चिड़ियाँ सांझ होते ही वृक्षों पर आ बैठी हैं। निरंतर चहचहाहट का कलरव सुनाई पड़ रहा है। वृक्षों की डालियों पर मानो उन्होंने अपना नया ही संसार बसा रखा हो। ये सभी पंछी परस्पर खुले मन से दो दो बातें कर रहे हैं – मानो आपस में सुख - दुख की मनुहार भरी लेन देन करती जा रही हो !

२४

बलूखड़ी रीझी बिरलै रूप,
बेहोंनी ऊभी कर वणाव।
धरा चो हरियो मखमल ढाल,
धोरिया प्रगटै इमि अपणाव।

२५

सुणीजै स्यारा री सरणाट,
झाड़का तीतर तीखा बोल।
बोकारै बसतौड़ी सून्याड़,
आपणौ आपौ राखै तोल।

२६

घणी चिड़कल्यां री चैचाट,
रूंख री डालां रो संसार।
करै खुल मन री बातां दोय,
मनीजै सुख-दुख री मनवार।

● अपने अपने घोंसलों में पक्षियों के नन्हें नन्हें बच्चे चोंचें खोल खोल कर सवाये प्यार से मिलकर अपनी आत्मीयता प्रगट कर रहे हैं। आपसी मिलन की यह लालसा कितनी प्रबल है ! कितनी अमूल्य है ! अगणित हृदयों की वास्तविक प्रसन्नता इसी अविच्छिन्न मेल मिलाप में ही तो है। ● ● इस झुटपुटी बेला में वृक्षों के हरे हरे छंवरों [गुच्छों] के बीच ही सर्व प्रथम अन्धकार ने अपनी पलकें उघाड़ी हैं ! वृक्ष से लिपटी हुई बेल ने अन्धकार के इस आकस्मिक दृष्टिपात को लक्ष्य किया और उसी क्षण वह हतप्रभ सी हो उठी। तत्काल ही उसने लज्जित सी होकर अपने मुंह पर पल्ला खींच लिया। [सांझ के समय बेलों के पत्ते कुम्हला कर नीचे की ओर झुक जाते हैं] ● ● ● सांझ के बाद अन्धेरा होने के पूर्व ही सुरक्षा के भाव से न जाने कब कमल समूह ने अपने गुलाबी महलों में भंवरों को बन्द करके अपने हृदय कपाट अकस्मात बन्द कर डाले हैं ? और : इधर मतवाले भंवरों के कानों में सांझ के पायलों की झनकार पड़ते ही उनकी काली पाँखें मद में सराबोर होकर डूब सी गईं।

२७

मिलै माला में चांचां खोल,
पंखेरू बिचिया इदकै मोद।
मिलण रो कितरो मोटो चाव,
हजारां हिवड़ा रो परमोद।

२८

भंवरां झुटपुटिये री वेल,
खुलै बा अन्धारै री आंख।
बेल पड़ लचकाणी लख जाय,
लजालू सिरकै पल्लौ नांख।

२९

दीना कद कंवल हिये कपाट,
गुलाबी महलां भंवरां राख।
सांझ री पायल ची झणकार,
डूबगी मद में काली पांख।

● सांझ के इस उनींदे वातावरण में ठीक बच्चों की सी भाँति बेल की सुखद गोद में सिर रख कर पूर्ण निर्भयता के साथ सुकोमल फूल मधुर ऊँग की मादकता में रसमग्न होने लग गये हैं। अबोध बाल्यपन की तन्द्रा और उस पर हरे हरे पत्तों की निरुपम सेज! अपनी समूची निर्बन्ध चपलता को भुला कर ये फूल पूर्ण रूप से बिलमा गये हैं। गहन निद्रा में तन्मय हो गये हैं। ●● [पश्चिम दिशा की तरफ जब तक ढलते हुए सूरज से थोड़ा बहुत भी हलका सा प्रकाश प्रतिभासित होता रहता है—कौए अपने दल बल सहित उस ओर उड़ते ही चले जाते हैं। और : अन्धेरा पड़ने पर बीच राह से ही व पिस लौट पड़ते हैं] बिना दूल्हे के, चंचल कौओं की यह बरात मानो किरण से शादी करने के लिये ही उड़ी चली जा रही है। बधू-पक्ष वालों के प्रतिनिधि अन्धकार ने अपने साथियों सहित बरातियों से मुलाकात की। और : तब बिना दूल्हे की इस कुरूप अवांछनीय बरात को विवश होकर बीच राह में ही वापिस लौट आना पड़ा। ●●● दृष्टि का प्रथम साक्षात्कार पाते ही मन को लुभा जाने वाले ये बाजरियों के हरे हरे खेत लहलहा रहे हैं। ये हिलते हुए लम्बे पत्ते मानो एक दूसरे से घरेलू बातें कर रहे हैं। इधर पास ही बेलें बाँहें पसार कर सो गई हैं। मानवीय दुनिया के इस अद्भुत आकर्षण को देखने के लिये अवश रात्रि पहाड़ की ऊँची चोटी पर चढ़ आई है। और : सांझ के अवगुंठन को हटाते हुए उसने पहली बार यह लुभावना दृश्य देखा!

३०

बेल रै खोल़े में धर सीस,
कंवल़ा फूल रह्या ऊंगीज।
पान री लीली सेजां हींड,
बिलमता रहग्या यूं बिलमीज।

३१

बींद बिन चल़ हाडा री जान,
परणवा किरण उडी आथूंण।
मुधारो मीलियौ ले पड़-जान,
जदै आ वलिया माथो धूंण।

३२

लुभाणा बाजरियां रा खेत,
पयंपै पान पान सूं बात।
पोढ़णी बेलां बांह पसार,
झांकियौ डूंगर पर सूं रात।

● दिन भर मार्ग में चलते रहने के बाद अब गाँव काफी नजदीक आ गया है। दिन भी ढलने को है। गाँव के पास पहुँच पाने की आल्हाद भरी लापरवाही के साथ बटोही पिलाण के एक तरफ दोनों पाँव लटका कर बैठ गये हैं। ऊँठ मन की मौज मनाते हुए बहुत ही धीमी चाल से बढ़ रहे हैं। फुरणी की आवाज निरंतर सुनाई दे पड़ रही है। मुहरी ढील देकर लटका दी गई है। बटोही प्रमुदित होकर ऊँचे स्वर में मूमल [एक प्रसिद्ध राजस्थानी लोकगीत] गीत का आलाप ले रहे हैं।

● ● सांझ का अन्धेरा घिर आने के पहिले बाजरी के पके हुए खेतों पर अन्तिम बार चिड़ियाँ दलबल सहित आक्रमण कर बैठती हैं। पर उधर ऊँचे मचान पर बैठे हुए रखवाले उनको भगाने के लिये जोर जोर से आवाजें कर रहे हैं। फरणाती हुई गोफण से छूटा हुआ पत्थर सूं सूं की आवाज करता हवा को चीरता हुआ छूट पड़ता है। तब चिड़ियों का असंख्य झुंड एक ओर उड़ पड़ता है - इतनी तत्परता के साथ कि दूसरे ही पल वह आकाश में ओझल हो जाता है। ● ● ● वर्षा ऋतु। गोधूली बेला। कुछ दूरी पर जमीन से उठी हुई रेत आकाश में बादलों का धूंआकार रूप लिये बढ़ी ही चली आ रही है। चरवाहे गायों को लेकर गाँव की ओर आ रहे हैं। गले में झूमते हुए टकोरों की आवाज निरंतर पास आती हुई सी सुनाई पड़ रही है। अब तो गायों के खुरों की खड़खड़ाहट भी सुनाई देने लग गई है। ग्वाले पूर्ण तन्मय होकर अलगोझे के मधुर स्वर निकाल रहे हैं।

३३

बटाऊ बैठा आड पिलाण,
ऊंठड़ा मारग झुरकै जाय।
सुणीजै फुरणी मूरी ढील,
मोद सूं मूमल-रूप सराय।

३४

माल़ां चढ़ ऊभा रखवाल़,
दाकलै गोफणियां सूंसाय।
उडै जद चिड़ियां-ढूल़ अलेख,
अजकता आभै में गम जाय।

* * *

अलगा उडै खंख रा गोट,
टोकरां टणमणती टणकार।
खुड़कै गायां हंदा लांठ,
सुणाजै बंसी री झणकार।

● गाँव में आने पर बछड़ों की आवाजें सुनाई दीं। गायें रंभाती हुई दौड़ पड़ीं। पूंछ हिलाते हुए बछड़े खूँटे से बँधी रस्सी तक तुड़ाने को उद्यत हो उठे। बछड़ों के खातिर गायें बेताब सी होकर हड़बड़ा उठीं। सँभालना मुश्किल हो गया। अपनी अपनी गायों को एक तरफ टाल निकाल ले जाने के लिये हठीले बच्चे उतावले होकर आपस में लड़ बैठते हैं। ● ● अपनी अपनी गायों को सभी लोग अपने अपने घर ले गये। खूंटों से बाँधा। सहलाया। पुचकारा। पर उधर वह गाँव के चौहटे में अनमना होकर, कान लटकाये अकेला साँड उदास मुद्रा में खड़ा है। वह सभी की आँखों से उपेक्षित और अनदेखा ही रह गया। बेचारा यह निरीह साँड साजे का जीव जो ठहरा! फिर भला किसी एक घर का मेहमान यह कैसे बने? ● ● ● बच्चों को रोता - बिलखता छोड़ कर घर की स्वामिनी गायों को दुहने के लिये हाथ में चरी लेकर आई। गोयर में गायों की मार भीड़ लगी है। चरी में धर्र - धर्र गिरती हुई दूध की धाराओं से मीठी आवाज सुनाई पड़ रही है।

३६

हींचता बाछड़िया तांबाड़,
मिल़ै जद गायां अड़वड़ जाय।
टाल़तां भूल आपणी गाय,
हठीला टाबरिया लड़ जाय।

३७

अणमणौ करियां टेपा कांन,
चोवटै ऊभौ हेकल सांड।
सेवट किण घर रो मिजमांन,
भलां ओ सीरोल़ै रो सांड?

३८

रोवता टाबरियां ने छोड,
आई दूवण ने घर नार।
घणौ री ह्वैगी गोयर भीड़,
सुणीजै मीठी दूधां धार।

● जिस घर में धवल दूध की फेनिल धाराएँ मुखरित हो रही हों और उस पर, घर में मनुष्यों का वास ! इस दुर्लभतम संयोग की क्या कुछ कीमत भी आँकी जा सकती है ? किसी अनजानी स्वर्ग - पुरी का सार है – तो यही ! इस अप्राप्य वस्तु को किन अमूल्य रत्नों के बदले तोल कर रखा जाय ? ●● हथेली पर दूध की चरी धरे हुए जब माँ ने घर में पाँव रखा तो बच्चे अकस्मात् दूध पीने के लिये हट कर बैठे। बूढ़ी माँ समझाते - समझाते हार गई – पर वे मानें जब न ! उनको तो दूध भर मिलना चाहिये – चाहे कच्चा हो, गरम हो, चाहे बासी ! इन हठीले बच्चों का रोना सुनकर सूने घरों की निर्जनता करुणार्द्र होकर पुकार उठी — इस संसार में जो कुछ भी सुन्दर है, शिव है, सत्य है वह एकमात्र मनुष्य के संसर्ग से ही है। ●●● [संध्या, भक्ति - भावना को अनुप्रेरित करती है] गृह - स्वामिनी बड़ी सतर्कता के साथ आंचल की ओट किये दीपक लेकर आई। बड़ी तत्पर लाग से उसे मूर्त्ति के सामने रखा। तेल का दीपक फीका सा उजास भर रहा है। उसी के नैसर्गिक आलोक के सम्मुख उसकी पलकें स्वयमेव श्रद्धानत होकर झुक चलीं। केवल पलकें ही क्या झुकीं, मानो व्यापक मन का अनन्त गगन ही झुक गया हो !

३९

जिण घर धवल धार री कार,
करूं मिनखां रो कितरो मोल !
अजाणी सरग - पुरी रो सार,
राखलूं कुण - सी लालां तोल ?

४०

टाबर दूध दूध हठ झेलै,
बूढी मां मनां मनां हारी।
बे सूनां घर जदै बिलारै,
जगत में माया मिनखां री !

* * *

जतन सूं दिवलौ आंचल आंट,
ठमक सूं लाई मेल्यो थांन।
उजालै झीणौ झुकी पलक्क,
झुकाणौ मनड़े रो असमांन !

● और : उस कुल वधू के बालों की इन दो गुत्थियों के बीच उसका मस्तक इस तरह श्रद्धा - नत हुआ मानो फलों के भार से बोझिल वृक्ष की सुकोमल डाली ही झुकी हुई हो। गृह - देवता के चरणों पर उसने अपना शीश क्या नवाया मानो अपने सम्पूर्ण यौवन की निधि और अकृत्रिम भोलेपन का प्रसाद ही अर्पण कर दिया हो। ● ● और उस गृह - लक्ष्मी ने श्रद्धानत होने के पूर्व जब दीपक को देवता के चरणों में रखने के लिये आंचल की स्नेहमयी ओट से दूर किया तो एक बाणी वह स्निग्ध लौ कुछ सिहर उठी, मानो मानवीय आंचल की उस पावनतम ओट से वह अलग ही नहीं होना चाहती हो। उसने तो बार बार अस्वीकृति के भाव से शीश हिलाकर घोषित किया कि वह न तो चेतन - हाथों की ओट से जड़ मूर्ति के आश्रय को श्रेयस्कर मानती है और न स्वयं को कुल - वधू की पलकों पर धारण हो सकने के योग्य ही समझती है। ● ● ● सांझ की इस पवित्र बेला में छोटी छोटी बच्चियाँ अपनी बाल्य सुलभ चंचलता पर पूर्ण नियंत्रण करके सुगम्भीर धैर्य के साथ ऊंची राग में 'वीरा' [बहिनों द्वारा भाइयों को गाया जाने वाला एक लोक गीत] गीत गाने लग गई हैं। और : इस पावनतम कार्य - व्यापार को सांध्य तारा निर्निमेष लालसायुक्त दृष्टि से टकटकी लगाकर मानवीय धरती के इन अपूर्व कृत्यों की सराहना कर रहा है। सौ सौ भाग्य हैं इस पृथ्वी के जो इस तरह के नैसर्गिक भावों की गीतात्मक अभिव्यक्ति से समृद्ध है।

४२

झुकी नस मींडलि़या रै बीच,
जाणै बिरछै कंवली़ डाल़।
देव रै चरणां साप्यौ सीस,
कै धन - जोबन, भोल़ - रसाल़।

४३

मन में कांपी कंवली़ जोत,
छोडतां उण आंचल़ री ओट।
धूणतैं माथे नटी निपट,
आवतां घण आंख्यां रै कोट।

* * *

धीवड़ियां धर बाल़ापण धीर,
उगेरै 'वी़रो' ऊंची राग।
जोवतां टुग टुग तारो अेक,
सरावै धरती रा सौ भाग।

● और : नन्हीं बच्चियों द्वारा प्रसारित उस 'वीरा' गीत की स्वर - लहरियों से कुल बहू का अन्तस प्रबलतम वेग के साथ आलोड़ित हो उठा। अपने भाई की बाट जोहते जोहते आज का यह सारा दिन भी ढल गया। एक एक दिन करके सावन तक आधा बीत चला। [शादी के बाद, पहिले सावन में बेटी को सुसराल नहीं रखते – उसे पीहर ले आते हैं।] बहिन को लेने के लिये अब तक उसके बड़े भैया नहीं आये। एक प्रच्छन्न वेदना युक्त गहरी निश्वास से उसका जी भर उठा। ●● साथ ही अपने मायके की सारी सुखद - स्मृतियाँ उसके हृदय में उमग पड़ीं। तालाब की वह ऊंची पाल! सहेलियों के साथ वे स्वच्छन्द क्रीड़ाएँ! वह पेड़! वह ऊंची डाल! वह झूला! माँ का वह लाड़ दुलार! और पिता की वह स्नेह वत्सलता! ●●● जिस दिशा की ओर उसका अपना गाँव; अपना देश, और अपनी दुनिया बसी हुई है उसी शून्य दिशा में उसका अविकल हृदय हुलस पड़ा है। आँखें वे ही हैं, दृष्टि भी वही है – पर कहाँ है वे चिर परिचित हरे हरे सघन वृक्ष? लेकिन स्मृति के लिये कैसा बन्धन? इन आँखों के सामने तत्काल ही उन वृक्षों की अन्यतम हरियाली नाच उठी!

४५

ढलग्यौ दिनड़ौ जोतां वाट,
बिताणौ आधौ सावण मास।
आयो न लेवण मोटो वीर,
बूनी जद नाख्या घणा निसास।

४६

आज तौ मन में पीहर कोड,
याद उण सरवरिये री पाल्।
खेलणौ साथणियां रै संग,
हींडणा हींडा डीगी डाल्।

४७

बूनी रो जिण दिसड़ी में देस,
उणी दिस हिवड़ौ हुलस्यो जाय।
फिरै वां आंख्यां में वे रूंख,
अचपली ओलूं कर रह जाय।

● गाँव की शाम का यह अजीब ही लुभावना वातावरण है। इधर तो झिंगुरों की झनकार आरम्भ होकर जैसे समाप्त ही नहीं होना चाहती है। और : उधर इन झनकारों ही को सांझ के पायलों की भनक मानकर मोर उसके स्वागत की अभ्यर्थना करने में तन्मय हो गये हैं। गर्दन को जमीन तक नवाते हुए ये मोर मानो इसी आशय से, श्रद्धानत होकर मुजरा कर रहे हैं। और : वह देखो हरी, पीली, लाल, सफेद इत्यादि रंग - बिरंगी चींदों से जड़ी हुई ईढ़ाणी को सिर पर धरे शाम की पनिहारिन पनघट की ओर चल पड़ी है। ● ● अथक परिश्रम के फलस्वरूप मानो इस पनिहारिन के वेश में स्वयं 'थकावट' ही अपना साकार रूप लेकर, गति में यौवन को दर्शाती हुई चली आ रही है। [सूनी राह, थकी देह, सिर पर पानी का घड़ा !] अनुकूल वातावरण में बचपन की स्मृतियाँ चंचल हो उठीं। वह उन्हीं की सुखद याद से विक्षिप्त मन को सहलाती हुई चली जा रही है। ● ● ● बचपन को निश्छल प्रीत का स्मरण मधुर अवश्य था, पर फिर भी उसकी स्मृति के हाथों पनिहारिन के यौवन पर लज्जा की गुलाबी झाँई व्यंजित हो उठी। सँकड़ी राह में स्वयं ही आँखों के सम्मुख शरमाती हुई, घूँघट से स्मृतियों को आवृत किये हुए वह तालाब के किनारे पहुँची। और : काली लट को नीच छिटका कर वह पानी भरने के लिये नीचे झुकी।

* * *

मोरियो मुजरो कर बोल्यो,
सांझ री जांझ पड़ी झणकार।
छबकाली ईढ़ाणी धर सीस,
चाली पिणघट ने पिणिहार।

४६

जाणै थाकेलौ धर रूप,
सिधायो जोबन रंग रमाय।
याद कर बालपण री प्रीत,
बिलखतै मनड़ै ने बिलमाय।

५०

सांकड़ै मारगिये सरमाय,
घूंघटै ओलूंड़ी अटकाय।
गई धण सरवरिये री तीर,
झुकी झट काली लट छिटकाय।

● [सरोवर की तरल लहरियों में पनिहारिन ने संध्या के अनुपम वातावरण को लहराते देखा :] किनारे के वृक्षों की लम्बी, सघन छाया निसंकोच अकेली स्नान कर रही है! संध्या सुन्दरी की सप्त-रंगी ओढ़नी लहरों के चपल हाथों द्वारा धोयी जा रही है। और : इस रूपसी के अनिंद्य, अथाह सौंदर्य को लूटने के लिये तृषित पवन ने तरंगों का छद्म-वेशी रूप धारण कर लिया है। ●● इन उद्दीप्त स्वच्छन्द क्रीड़ाओं को सोते हुए तीर जी भर कर निहार रहे हैं। किनारों की इस निर्लज्ज ढिठाई को लक्ष्य करके फिर पनिहारिन से वहाँ खड़ा नहीं रहा गया। उसकी मौन नीरवता अस्थिर हो उठी। और : सांझ की ढलती हुई अन्तिम पीतवर्णा किरण की भाँति लज्जा से व्युत्पन्न पीलापन लिये हुए वह पनिहारिन तत्काल ही वहाँ से लौट पड़ी। ●●● वर्षा ऋतु की संध्या! परदेशी प्रियतम की मधुर स्मृतियों की दुखद अनुभूति लिये विरहिणी छत पर समाधिस्थ अवस्था में खड़ी है। दूर दूर तक फैले हुए पथ के कण कण में उसकी दृष्टि बिछ गई है। अन्तहीन प्रतीक्षा के कारण दृष्टि अब थक चली है। उसकी आँखें सावन के बादलों की तरह बरस पड़ीं। संध्या के बढ़ते अन्धकार में उसकी गहरी लाल ओढ़नी का रंग अब कुछ कुछ मलीन सा दिखलाई पड़ने लग गया है।

५१

अेकली छाह नहावै नीर,
लहरां धुपै लहरियौ रंग।
सांझ रो लूटण रूप अथाग,
पवनियो तिरसौ वणै तरंग।

५२

जदै खुल देखे सूता तीर,
रहै ना, अणबोली थिर नार।
सांझ री किरण ढलै आथूंण,
वली यूं पीलीजी पिणिहार।

* * *

डागलै ऊभी विरहण नार,
पंथ में बिछगी थाकी मीट।
सांवणूं घण घिरता चख आय,
कसूंबल मगसी पड़गी छींट।

● अपलक दृष्टि से प्रतीक्षा करती हुई विरहिणी की नथ का सफेद मोती संध्या के प्रतिबिंब से गुलाल सा हो उठा है। माँग में सिंदूर की रेखा सोई पड़ी है। याद, उसके हृदय में रह रह कर प्रियतम के प्रति अलख जगा रही है। आँखों में भरपूर आँसू उमड़ पड़े हैं। ●● दूर क्षितिज के ठेठ उस पार तक सर्वत्र हरियाली ही हरियाली बिछी पड़ी है। पृथ्वी के कण कण में आनंद की उपज लहलहा रही है। यह सब सावन के बरसे हुए बादलों का सहज परिणाम है। पर, असहाय विरहिणी के ये दो नयन तो बरस बरस कर हार से गये किन्तु उसके हृदय में आशा का हरित अंकुर न उगा सो अब तक न उगा। ●●● विरहिणी के कानों को 'काछवा' गीत [राजस्थानी का एक लोक गीत] की दूर से आती हुई मीठी टेर सुनाई दे रही है। संपूर्ण मानस आलोड़ित हो उठा। अकेली औरत! उस पर यौवन का असह्य बोझ! लज्जा की असमर्थ डोरियाँ कसमसा उठीं!

५४

नथ रै मोती लाल गुलाल,
टाल में सूती रेख सिंदूर।
जगावै ओलूं हिये अलख,
आंखड़ी आंसूड़ा भरपूर।

५५

खितिज री छाती लग लीलाण,
धरा में दीसै घणौ सुगाल।
हारिया बरसंता दो नैण,
कठै पण हिवड़ै मीठो फाल!

५६

सुणीजै काछबिये री टेर,
हियो जद लूंब्यो झूंब्यो जाय।
अेकली भांमण जोबन भार,
लाज री डोरी कसमस जाय।

● संध्या - दुलहिन के अनुराग युक्त लाल रंग से आरंजित पवन मस्ती के साथ झूमता चला आ रहा है। गालों से चिपटी नागिनों [जुल्फों] को वह अपने स्पर्श से जगा देता है। इस स्पर्श की उत्तेजना से विरहिणी के धैर्य का बाँध टूट कर ढह पड़ा है। ● ● सहसा गेरी [एक जीव विशेष] के करुणार्द्र स्वर को सुनकर विरहिणी एक दूसरे ही विचार में खो बैठी। उसकी रग रग में अबोध लज्जा 'सरण' [एक रोग विशेष जिसमें बिजली के करेंट सा कंपन होता है।] के समान कसक उठी। होठों की ओट लेकर उसका हृदय धीमे से फुस फुसा उठा – हवा ! मीठी चाल से कुछ धीरे बहो ! ● ● ● ये दो कुच विरहिणी की छाती पर मानो दो घड़ों के समान हैं; जिनको इस पनिहारिन ने यौवन के पनघट से डुबो कर भरा है। [इन दो घड़ों का भार लिये यह पनिहारिन वियोगिनी का रूप धरे इस पनघट पर खड़ी है।] पर क्योंकर सँमालेगी एक साथ यह दो दो घड़ों का भार जब कि सूरज - रूपी एक ही घड़े के भार से यह अचला [पृथ्वी] विचलित हो उठी है। और थकित सी होकर वह पश्चिमी किनारे की तह में इस घड़े को डुबो रही है।

५७

पवन सांझ - बनी रंग राच्यो,
झूमतो आवै मुधरी चाल।
पौढ़ती नागण जगा कपोल,
तोड़दै धण धीरज री पाल!

५८

अचांणी गुणता गोरी गूंज,
सरण ज्यूं आवै भोली लाज।
होट री ओट हियो कह जाय,
बायरिया धीमौ मुधरौ बाज।

५९

जोबन पिणघट घट भर दोय,
विजोगण ऊभी आ पिणिहार।
डुबोवै घर सूरज घट अेक,
संभालै किम धण दूणौ भार?

● संध्या की मनोहारिणी बेला में आनंद से पुलकायमान होकर पंख पसारने का कार्य तो किया सुरंगे मोरों ने, पर इस दृश्य के संयोग से नृत्य की अतिरिक्त पूर्ति प्रसरित हुई वियोगिनी के हृदय में। उसका भावुक हृदय नृत्य निरत हो उठा। और : पयोधरों के तल भाग में प्रियतम की याद का मधुर गर्जन सुनते ही उसकी आँखों में आँसुओं की बरसात उमग पड़ी। ● ● [सांझ के बाद धीरे धीरे अंधकार की सघनता भी बढ़नी आरंभ हो गयी है।] आकाश की अनंत नीलिमा में ज्यों ज्यों तारों की संख्या अधिक होती जा रही है वियोगिनी की आँखों में आँसुओं का क्रम भी बढ़ता जा रहा है। उधर घर घर में दिवलों की ज्योतियाँ प्रज्वलित होती जा रही हैं और इधर वियोगिनी की रग रग में पीड़ा सुलगती जा रही है। ● ● ● सांझ का यह एकांतमय वातावरण एक अजीब ही प्रकार का है कि जिसके साहचर्य से कवि का हृदय भी पुरानी स्मृतियों के बीच भटक गया। बीते हुए दिनों की बीती बातें चारों ओर से घिर आईं। स्मृति की पुरानी जाजम पर संध्या क्षण भर के अल्पतम समय में ही सब तरफ सब कोनों में फिर उठी।

६०

सुरंगा मोरां किया कलाव,
सायधण हिवड़ौ घूमर खाय।
गाजतां पीव पयोधर याद,
आंखड़ी लूंबां-झड़ उलझाय।

६१

भरीजै उड़गण सूं असमांन,
विजोगण आंखड़ियां में नीर।
जगाणी घर घर दिवलै जोत,
सायधण रग रग बैरण पीर।

* * *

अरे थूं वण अेड़ी इकलाण,
लाई बीती बातां घेर।
याद री जूनी जाजम ढाल,
फिरगी पल भर में चौफेर।

● पृथ्वी के अंतहीन रस का भोग करने वाले वे अगणित भूपति आज धरिणी की सेज पर अनंत निद्रा में सोये पड़े हैं। समय के साथ मनुष्य बदले। विचारों में परिवर्तन आया। सत्ताएँ बदलीं। राज्य पलटे। पर प्रभात और संध्या की अभेद्य सीमाओं के भीतर परिवर्तन का प्रवेश संभव नहीं हो सका। ● ● इस दुनिया का सब कुछ क्षण-स्थायी है— क्या यौवन की यह उमड़ती हुई काली घटा, क्या सौंदर्य के पायलों की मुखरित क्वणन ध्वनि का यह आघात और क्या दो हृदयों का यह समधुर मिलन ? सब कुछ क्षणिक है ! अचिर ! केवल कहानी मात्र ! दो दिनों की बीती हुई कहानी ! ● ● ● पर जिन महान् विभूतियों की याद युग युग तक जीवित रहेगी—वे भला इस दुनिया के लिये ऐसा क्या कुछ कर गये ? स्वर्ग उन्हें सौ सौ नमस्कार करता है ! ढलती हुई किरणें श्रद्धानत होकर उनकी बलइयाँ ले रही हैं !

६३

रसा रा भोगण - हार अलेख ,
पौढ़िया धरणी - सेज कुमार ।
पलटिया मिनख , बदलिया राज ,
पण अे सागेई सांझ - सुवार ।

६४

उमड़ती जोबन काठल आज ,
रूप रै रिमझौलां री घात ।
मनां रो दो दिन रो मेलाप ,
बणसी दो दिन बीती बात ।

६५

जकां री जुग जुग आसी याद ,
थिरां में कांई करगा साज ?
उणानै सरग निमै सौ बार ,
वारणा लेवै किरणां आज ।

● चारों ओर से एक साथ संध्या का अंधेरा घिर आया ; परन्तु अब भी न जाने कितने पंछी राह ही में भटक रह गये हैं ! न जाने कितने पति अभी तक रास्ते पर चलते रहने के कारण 'बटोही' ही बने हुए हैं ! न जाने कितने ही भौंरे सिमटते हुए कमलों के बीच अटक रह गये हैं ! और : जो पति राह के बटोही बनकर ही रह गये हैं उनकी पत्नियों ने सांझ के बाद अब उनके आने की आशा छोड़ रखी है । उनका शृंगार अधूरा ही रह गया ! ● ● आकाश की ऊँचाई पर से एक जगह स्थिर और घनीभूत सी होकर संध्या के समय की गोधूली अवाक् सी झाँक रही है कि इस संसार में कितना अधूरापन है ! और : इस अपूर्णता से धरती विचलित होती है या नहीं , उसके इसी धैर्य की परीक्षा लेने के लिये खांखल [गोधूली] रात भर पृथ्वी की मेहमान बन कर रहेगी । और प्रात : काल वापिस उड़ चलेगी ! ● ● ● संध्या की इस संक्रान्तिमय अवधि के समय कुछ क्षणों के लिये समस्त प्रकृति स्तब्ध हो उठी है और समूचे वातावरण में एक अज्ञात सूनापन उमस पड़ा है ; जिस प्रकार कि किसी मानवीय हृदय में अमूल्य दिन-मानों के उलट जाने से एक अवांछनीय अवसाद घुल जाया करता है ।

* * *

कितरा पंछीड़ा मग मांय,
बटाऊ बण रह्या भरतार।
झबूकै अधबिच भौर कंवल,
अधूरा कांमणियां सिणगार।

६७

गैण बिच ऊभी खांखल जोय,
जगत रो अेक अधूरो मांन।
परखवा आज धरा चो धीर,
रात लग रहसी बण मिजमांन।

६८

खिण अेक धरती अम्बर बीच,
अमूंजै सूनौपण अणजाण।
घुलै ज्यूं अणहूंतौ अवसाद,
फिरंता मन मूंगा दिन - मांन।

● संध्या। इस पृथ्वी पर का क्षीणतम निशेष आलोक धीरे-धीरे अदृश्य होता जा रहा है मानो रात्रि अपने ही हाथों से इस श्यामल सेज के लिये एक एक करके अन्धकार की परत पर परत बिछा रही हो। और इस समवेत दृश्य की समग्रता इस तरह प्रतीत हो रही है कि जैसे मनुष्य का हृदय - चन्द्र एक एक करके मायारूपी बादलों की बढ़ती हुई सघनता से आच्छादित हो जाया करता है। ●● किसी अनजानी दिशा में रात्रि साज [ललाट के बीच चन्द्रमा और हीरक तारों से जड़ी हुई साड़ी] सजा रही है। यह अन्धकार उसी की आँखों के काजल का प्रतिरूप है। और आकाश में झिलमिल तारों की यह आभा ऐसी प्रतीत होती है मानो हँसती हुई कुमुदनियाँ नभ रूपी दर्पण में अपना मुँह देख कर प्रफुल्लित हो रही हैं। ●●● [राजस्थान के देहातों में कुँवारी लड़कियाँ सांझ पड़ते ही मौन धारण कर लेती हैं। सांध्य - तारे को देख कर ही यह मौन समाप्त होता है।] मौन - धारण की हुई अनेकों बालिकाओं की भोली आँखें साँध्य - तारे की खोज में आकाश से जा लगी हैं। सहसा उस तारे को देख कर वे खड़ी हो गईं। हाथ जोड़ कर उसकी आराधना की। एक सहेली मौन छुड़ाने की रस्म पूरी करने लगी है। मौन छुड़ाने वाली इस सहेली का साथ कितना श्रेयस्कर है! कितना सुखद है!

६६

विलोपै धरणी खीण उजास,
पाथरै सांवल सेजां रैण।
मगसौ माणस हियो मयंक,
जुड़ंतां जलहर माया जैण।

* * *

किणी दिस साज सजावै रैण,
ऊघड़ै काजलिये री कार।
आरसी उरसां निरखै रूप,
कुमदणी हँस हँस पोवै हार।

७१

गैण ने मिलिया भोला नैण,
जोवतां तारक जोड़्या हाथ।
छुड़ावै कोई साथंण मूंन,
भलौ है उण साथंण रो साथ।

● चपल बालक तारों को अपनी मुट्ठियों में भरने के लिये मचल मचल रहे हैं। उच्छृङ्खल यौवन अपनी असाधारण घातों में तल्लीन है। परन्तु आज संध्या के बाद की इस अपूर्व आनंददायिनी बेला में विवश 'बुढ़ापा' धूनी की आँच में निष्क्रिय सा होकर बैठ गया है। अपने अपने दिनों को फेर है यह! ●● दिन के प्रकाश में नर-नारी लाखों यत्नों से अपनी लज्जा को आवृत करने में सतर्क रहते हैं किन्तु रात्रि के अंधकार में वे ही पति-पत्नि बिना किसी संकोच के, बिना किसी झिझक के अपनी संपूर्ण चेतना खोकर 'अनचेत' से हो जाते हैं। कितनी भली है यह सांझ कि इसकी शुभ-बेला में जगत के सभी प्राणी स्नेह और वात्सल्य से अनुप्रेरित होकर अपने अपने घरों की ओर लौट पड़ने के लिये चंचल हो उठते हैं। और यह प्रभात है कि सभी लोगों को घर से बाहर निकलने के लिये वाध्य होना पड़ता है। ●●● सांझ की सुखद गोदी में दिन निश्चिन्त सा होकर सो गया है। इधर दिन के प्रकाश ने झपक ली नहीं कि उधर तत्काल ही यौवन का शृंगार अंगड़ाई लेकर जाग उठा है। और: इधर नदी और नालों के बहते हुए पानी की गति बहुत कुछ धीमी हो चली है तो उधर दो हृदयों की पारस्परिक मनुहारें और भी अधिक वेग से बाहर बह निकल आई हैं। ऐसा ही है सांझ का अद्भुत प्रभाव!

७२

अजकणां टाबर तारां काज,
करै जोबन जोबरली घात।
बुढ़ापौ रहग्यौ धूणी आय,
भली आ दिन लाग्यां री बात।

७३

दिनां में करै जतन करोड़,
रात में अणचेतै धण कंथ।
सांझ ने घर पूगण रो नेह,
ऊगै दिन परदेसां रै पंथ।

७४

सांझ री गोदयां सूतौ दीह,
जागियो जोबन रो सिणगार।
ठंबियो नदियां हन्दो नीर,
हाली हिवड़ै री मनुहार।

● सांझ के आते ही कई प्राणियों के हृदय तो उल्लास व हास से प्रफुल्लित हो उठते हैं और कई अभागों को असीम दुःख के कारण आँसू ढालने पड़ते हैं। सुख और दुःख के इन्हीं उतार-चढ़ावों के थपेड़े खाता हुआ यह जीवन-तालाब हँसी व आँसुओं की पाल से बँधा हुआ है। ●● चन्द्रमा के वाहन 'मृग' को निशाना बना कर अगणित बाण साधे गये — पर सब निष्फल! लक्ष्य पर एक भी नहीं लगा। [नभ में बिखरे हुए तारे उन्हीं छोड़े हुए बाणों के निःशेष चिन्ह हैं।] जगत में जो हर क्षण दूसरों के लिये शीतलता प्रदान करता है उसे भला कौन पीड़ा पहुँचा सकता है? चन्द्रमा की स्निग्ध मुस्कान की दीप्ति को इसीलिये आज तक कोई म्लान नहीं कर सका। ●●● चन्द्रमा रूपी यह बनजारा न मालूम किस ध्यान में सोया पड़ा है कि तारों की 'बालद' ने आज निश्चिंत होकर मन चाही स्वच्छन्दता के साथ चरना आरम्भ कर दिया है। पर किरत्यों का यह समूह क्यों व्यर्थ के संकोच से एक ही जगह सिमटता चला जा रहा है? वे क्यों नहीं इस शुभ-अवसर का लाभ उठातीं? बनजारा सो रहा है — इसलिये जितनी जल्दी हो सके उन्हें स्वच्छन्द विचरण करती हुई इस बालद से मन-वांछित अमूल्य शृंगार चुन लेना चाहिये!

७५

भराणा केहिक हिवड़ा हास,
दिया किणी अंबक आंसू ढाल।
बंधाणौ जीवण-सर इणी-हाल,
हँसी नै आंसूड़ा री पाल।

* * *

चुभाणा उरसां अणगिण तीर,
मिरगलै लागौ नीं इक बाण।
मिटै किम जग में किणी जतन,
चंद री मंद हँसी रो मान।

७७

सूतौ बिणजारो किण वाट,
चरै आ छूटी बालद आज।
टाल़लौ मन मांग्यौ सिणगार,
करो नां किरत्यां इतरी लाज।

● सांझ होते ही नन्हें बालकों की आँखों में नींद घुलने लगी है। पालने में झूलते हुए अर्ध - निन्द्रित बालक माँ की मधुर - स्नेह - सिंचित 'लोरी' की थपकियों में सब कुछ भूल से गये हैं। सोते हुए बालक के नैसर्गिक भोलेपन को देख कर माँ के कंठ में अपार नेह छलक आया है। वात्सल्य सुख में सरोबार माँ के हृदय का हार हिलोरें खा रहा है। पालने के झोलों और हृदय के हिलोरों में एक अनोखी होड़ सी लगी है। ● ● यह शैशव काल की लोरियाँ अनमोल हैं। दूज के चाँद सा कोमल बालक मन को अपने में लुभा लेता है। चाँद के समान ऐसे सुन्दर बालक की माँ के ये नौ लाख हाथ [तारे] प्रत्येक संध्या को, रेशम के डोरों से बँधे हुए इस पालने को झुलाते रहते हैं। ● ● ● लोरी के स्नेह भरे स्वरों को सुनते सुनते बालक निश्चेतन सा गहरी नींद में सो गया है। आँखों की इस नींद और इन पलकों में भोलेपन का संपूर्ण मूल्य आकर केन्द्रीभूत हो गया है। उन निमीलित नयनों पर छोटी छोटी भौहों की पाल ने मानो सुख के उद्वेलित, अपार सागर को ही प्रतिबन्धित कर डाला है।

* * *

पालणै हींडै नैना बाल,
मावड़ी हालरिये हुलराय।
कंठ में छुलकै नेह अपार,
हिंये रा हार हिलोला खाय।

७६

बालपण हालरिया अणमोल,
ऊगतौ दूज चंद्र मन भाय।
नवलख मावड़ली रा हाथ,
सांझ नित रेसम डोर हिंडाय।

८०

घुलै जद आंखड़ियां में नींद,
पलक में भोलै-पण रो मोल।
नैन्हा भोपणियां री पाल,
भरीजै सुख-समदर बेछौल।

● बालक को निश्चल सोता हुआ देख कर, उसके कोमल अधरों के बीच, जगत में दिन भर भटकते भटकते हारी थकी सी अचेतन शांति स्वाँस लेने की क्रिया तक को विस्मृत करके पूर्ण निमग्नता के साथ सो गई है। अभी अभी इस निद्रावस्था के समय ही सजग बालक के अंगों की उस निर्बन्ध चंचलता को न मालूम कौनसी कुमेत [एक तेज घोड़ी] इस नभ मार्ग से चुरा ले गई है? ●● सोते हुए बालक के स्वासों में स्वप्नों का अद्भुत संसार रूप धारण किये हुए है। इन स्वप्नों में लगी हुई कल्पना अनेकों स्वर्गों को एक साथ रख देने पर भी तुलना में अधिक भारी होगी। धीरे धीरे चलने वाला यह स्वाँस मानो भोलेपन के तीर पर मंथर गति से तैरती हुई विधि की मन चाही मनुहार की भाँति बहता चला जा रहा है। ●●● ऐसा कौन है वह शक्तिशाली जो प्रभात को संध्या में बदल डालता है? आखिर कौनसी वह अदृष्ट सत्ता है कि जिसके संकेत से भला सूर्य की प्रखर ज्योति जिससे दिन प्रकाशवान् रहता है - वह क्यों केवल रात्रि के नूपुरों की झंकार के साथ ही खंड खंड होकर विलीन हो जाती है?

८१

अधर बिच पौढ़ी सांस भुलाय,
सांयत जग भटकी अणचेत।
चंचल अंगां री चक चोल,
लेयगी नभ - पथ किसी कुमेत ?

८२

सांस में सपनां रो संसार,
अलेखां सरगां रै उणिहार।
तिरै है भोलेपण रै तीर,
बिहि री मन चींती मनुहार।

* * *

कहदै कुण अेड़ो जग मांय,
करै जो परभातां री सांझ ?
दिनां री सूरज हंदी जोत,
झड़ै क्यूं रातड़ली री जांझ ?

● और फिर सांझ के बाद वापिस प्रभात ! प्रभात के बाद फिर वापिस सांझ ! इसका कहीं कोई अंत भी तो दिखलाई नहीं पड़ता ! आखिर कौन है वह जो बच्चों की सी भाँति यह अस्थिर खिलवाड़ कर रहा है ? बनने और मिटने के इस अमिट क्रम का दूसरा नाम ही 'संसार' है। प्रकाश और अंधकार के इस परिवर्तित संयोग में ही क्या विश्व का मूल तत्व अंतर्हित है ? ●● लम्बे लम्बे वृक्ष ! घनी हरियाली ! और इस सघनता के पश्चिमी कोने से चमचम करती हुई पीली आभा ! कौन है यह जो वृक्षों के गुच्छों में इस तरह छिपता दुबकता केसर की नाप - जोख [व्योपार] कर रहा है ? और फिर रात के समय झिलमिल झिलमिल चमकते हुए सितारों की यह दुकान किसने सजा रखी है ? इन अगणित हारों को बिखेरने वाला आखिर यह है कौन ? ●●● [इस प्रदर्शनी का कहीं कोई पार भी तो नहीं है।] सुबह पुरब की ओर ललाई ! शाम को पश्चिम की ओर वैसी ही लालिमा ! कौन है वह ऐसा रंगरेज जो किसी गुप्त मार्ग से आकर यह रंगाई का काम किया करता है ? और यह रँगा जाने वाला लाल वस्त्र किस विश्व - सुन्दरी का है ? और कैसा है यह वस्त्र जिसे झपेटने के लिये समस्त अंबर की जगह चाहिये ? पहली झपेट पूरब में तो दूसरी पश्चिम में। आश्चर्य !

८४

सांझ रो क्यूं पाछौ परभात,
करै कुण टाबरियां रो खेल?
जगत है बण-मिटवा रो नाम,
अंधारै उजाळै रो मेळ।

८५

आथूंणी रूंखां मांझल आज,
करै कुण केसर चो वौपार?
रात में हीरां वाळी हाट,
बिखेरै कुण जी अणगिण हार?

८६

रंगै है किण धण रो कुण चीर,
केहि पथ रंगरजवो नित आय?
उगूणी आथूंणी दै छौळ,
सुखावै आखै अंबर माय!

● यह ऐसा कोन निर्मोही है जो संध्या - सुन्दरी के लाल आंचल को निर्दयता पूर्वक झटक कर चाँदनी में रास लीला का आनन्द लूट रहा है ? [अपने सोहाग के प्रति इस निर्मम प्रताड़ना को वह क्यों कर सहन करेगी ?] कोमल किरणों का सूक्ष्म रूप धारण करके क्यों स्वर्ग की अप्सराएँ इस तरह पृथ्वी पर विलास क्रीड़ा कर रही हैं ? ● ● बाल्यमन के समान प्रभात की इस निष्काम , निष्कपट , अबोध मुस्कराहट के पीछे , दोपहर की कर्मरत यौवन मयी दौड़ धूप की ओट में और ढलते दिन की परिणिति के उस पार यह कौन निश्चल शक्ति अर्न्तध्यान होकर बैठी हुई है ? ● ● ● संध्या हो जाने पर दिन भर के कार्य - व्यापारों से निपट कर औरतें खेतों से अब घर लौटने की तैयारी कर रही हैं । सबके सिर पर कुछ न कुछ बोझा रखा हुआ है । कोमल कंठ से वे गीत गाती चली आ रही हैं । छोटे छोटे बच्चे रह रह कर गोद से खिसक पड़ रहे हैं । गोधूली मानो उनकी बड़ी बड़ी पलकों से गुलाल की फाग खेल रही है ।

८७

सांझ रो रातौ आंचल छोड,
चांनणी में कुण मांडै रास?
कंवली किरणां चो कर भेख,
करै किम परियां धरा विलास?

८८

प्रात री बाल हँसी रै मांय,
जूंझतै सिखरां जोबन बीच।
ढलता दिनड़ा री उण पाल,
बता कुण बैठ्यो आख्यां मींच?

* * *

गोरियां ऊंच्यो माथै बोझ,
गीतड़ा गावै झीणी राग।
गोद में झुरै हठीला बाल,
रमै जद खाखल नैणां फाग।

● मेहनत के हाथों इस संसार का साज - सँवार करने वाली इन औरतों को घर की प्रीत खींचे चली जा रही है। कितने ही घर उनके आने की राह तक रहे हैं। किन्तु उन्हें तो अभी से यही चिंता लगी है कि तड़के जल्दी ही खेत पर काम करने जाना है। काम ! काम ! दिन और रात काम ! खेत और घर के बीच ही उनकी उम्र व्यतीत होती जा रही है। जीवन प्रभात के साथ ही रात्रि के अन्धकार ने धर दबाया ! ● ● यह घर और यह घर की प्रीत ! यह घर का आकर्षण ! घर में पहिला कदम रखते ही अमर - सुहागिन भूख – वधू ने गृह - स्वामिनी के पैर छू कर उसकी अभ्यर्थना की। उसका सत्कार किया। भूखा बच्चा रोटी के लिये मचल उठा। बाल्य हठ ! और वह भी रोटी के लिये ! माँ की ममता विदीर्ण हो गयी ! हृदय फट पड़ने सा लगा। ● ● ● पर माँ की आँखों से आँसू नहीं गिरे। उसने तो भूख को भाग्य की सहज देन भर समझ रखा है। और भाग्य ही के क्रूर हाथों द्वारा सताया हुआ यौवन अभी से बुढ़ापे में समा गया है। पूर्व कर्मों के रोने पर भला किसका वश ? ऐसी ही है उसकी समझ ! ऐसा ही है उसका ज्ञान ! ऐसा ही है उसका जीवन - दर्शन !

६०

घणा घर जोवै ज्यांरी बाट,
मनां में चींतै वे परभात।
खेत घर बिच में बीती जूण,
ऊगतै दिनड़ै व्हैगी रात।

६१

फिलै में आई घणी हलूस,
लागी पगै सुहागण भूख!
कलपियौ बालूड़ौ हठ झेल,
हुवा जद हिवड़ै रा दो टूक।

६२

आंखड़ी ओसरियो नेह नीर,
जाणियो भूख भाग रो मेल।
रोवती करमां ने धण आप,
बुढ़ापै जोबन दीनौ भेल।

● भूखे बच्चे की असमर्थ माँ किस पर गुस्सा करे ? क्यों करे ? जाने या अनजाने उसकी आँखों में रोष की लाली तक उभर नहीं आ सकी। पर चेहरे पर थकान का पीलापन स्पष्ट रूप से व्यक्त हो रहा था। विश्राम कोसों दूर खड़ा उपहास की हँसी हँस रहा था। और थकान ने उस अबला के सभी अंग-प्रत्यंगों को पूर्ण रूप से जकड़ रखा था। ●● जिस घर में आज यह करुण संध्या गुजर रही है – उस घर में इसके पहिले भी न जाने कितनी काली भयंकर रातें पार हो चुकी हैं। एक नहीं – लाखों काली रातों का घना अन्धकार इस छोटे से घर में संचित हुआ पड़ा है। नये प्रभात की शीतल भाँई इस घर से हमेशा दूर बनी रही। केवल रात के पश्चात रात ही यहाँ का क्रम है। ●●● इस क्रूरतम विषमता को लक्ष्य करके फिर कवि का हृदय चुप नहीं रह सका। उसने संध्या से प्रश्न किया — देखो, सच सच कहना कि तुमने इस विश्व में आकर क्या विशेष बात देखी ? [संध्या ने मौन रह कर ही व्यक्त किया :] "इस संसार में जीव अपने लक्ष्य को भुलाकर व्यर्थ ही इधर उधर भटक रहे हैं ! उन पर अदृष्ट माया का एक छत्र राज्य है।"

६३

आंख में आई कद रातोड़,
ऊभलै चेहरै पीलो रंग।
हँसै आधौ ऊभौ विसराम,
बांधिया थाकेलै सह अंग।

६४

जिकण में बीतैली आ सांझ,
बिताणी कालि रातां लाख।
नवोड़ो आयो नीं परभात,
भुलाणी रात रात में झांख।

* * *

कहजै सांची पूछूं सांझ,
धरा में कांई देख्यो आज?
'भटकती जग मिनखारी जूण,
अजांणी माया रो थिर राज।

● लोभ के गोलाकार चक्कर में लोग लक्ष्य भ्रमित होकर दौड़ भाग कर रहे हैं। दौड़ने की इस क्रिया से रेत उड़ उड़ कर ऊपर की ओर उठती ही चली जा रही है। फैलते फैलते वह समस्त आकाश तक फैल गई। पर लोभी मनुष्यों की विवेक-हीन चेष्टाओं का कहीं कोई पार नहीं है। कितनी दौड़ भाग के साथ मर-खप कर ये लोग सोने की लंका का निर्माण करते हैं – पर मरते समय उनकी समस्त लालसाओं को हार माननी पड़ती है। [लोभ के वशीभूत होकर जिन मनुष्यों ने केवल 'धन संचय' ही को अपने जीवन का एकमात्र लक्ष्य मान लिया है – उनकी विडम्बना इसी प्रकार हुआ करती है।] ● ● यह इतनी बड़ी दुनिया केवल दो जातियों में बँटी हुई है। एक तो वह समर्थ जाति है जिसको सुबह उठते ही उम्र भर की भूख महसूस होने लगती है। वह संचय पर संचय करती जा रही है। कोई विराम नहीं। और दूसरी वह असमर्थ जाति है जिसको सुबह से शाम तक की मुश्किल है! खाने के लिये पूंख [धान के सिट्टे] की आवश्यकता से वंचित इनका शरीर ही मानो भूख की ज्वाला में पूंख के समान जल रहा है। ● ● ● लाखों बच्चे इस धरती पर जन्म ग्रहण करते हैं। बालक का जन्म चाहे अमीर के घर हो, चाहे गरीब के उसके जन्म की खुशी एक सी होती है। स्नेह के पालने में उन्हें समान भाव से हुलराया जाता है। पर जन्मे हुए उन लाखों बच्चों में से कुछ ही ऐसे बच्चे हैं जो वृक्षों के सहारे बढ़ने वाली लता की तरह फलते फूलते हैं किन्तु उनमें से अगणित बच्चे माँ की गोद ही में सदा के लिये सो रहते हैं। एक सा स्नेह पाकर भी वे भूख से मर जाते हैं।

१६

'लोभ रै कूंडाल़ै में भाज,
उडाई आभै तांई खंख।
जगत री जग में ही रह जाय,
बणावै नर सोने री लंक!

१७

'आज तौ लागै इण परभात,
घणा ने ऊमर भर री भूख।
मिनख ने दोरो सांझ सुवार,
सिकै नित काया जाणै पूंख!

१८

'जलमिया धरती लाखां लाल,
कोड रै हालरिये हुलराय।
गिणिया बधै बेल री जात,
अणगिण खोल़ा में रह जाय!

● [सांझ ने बड़े आश्चर्य और विक्षोभ के साथ देखा कि इस विषम दुनिया में ऐसा भी हुआ करता है ! आखिर किस विवशता से वाध्य होकर इस घृणास्पद दृश्य को घटित होना पड़ा :] इस नव - अंकुरित रूप और इस जर्जरित बुढ़ापे का क्या मेल ? फिर भी जीर्ण - शीर्ण बुढ़ापा अक्षत सौंदर्य से गठ - बन्धन कर रहा है ! भला इसमें कन्या के यौवन का क्या वश ? जब उसका समाज , उसका घर , उसका देश ही उसे ऐसा करने को वाध्य कर रहे हैं ! ●● गोधूली बेला की इस धूमिल शून्यता में लोगों की आहें और कराहें छटपटा रही हैं । प्रत्येक नया व्यक्ति इस धूमिलता में अपनी नयी आह छोड़ जाता है । रात को सोते हुए भी इन व्यक्तियों को चैन नहीं ! वे सपनों में भी अपने अभावों के लिये बड़बड़ाया करते हैं । उनके लिये उगता हुआ प्रभात और ढलती हुई संध्या दोनों ही एक से हैं । ●●● यह दुनिया एक विशाल समुद्र के समान है । इसमें एक भयंकर उत्पात मच रहा है । किनारों पर खड़ा रहना तो एक दम से असंभव हो उठा है । विकराल लहरों के थपेड़ों से किनारे ढह ढह कर गिर रहे हैं । और पानी के भीतर निवास करना तो और भी मुश्किल है । कुछ ही मगरमच्छ ऐसे हैं — जो प्रतिदिन फूलते जा रहे हैं । छोटी छोटी अगणित मछलियों को सम्पूर्ण रूप से वे जिन्दा का जिन्दा ही निगल रहे हैं । छोटी मछलियों के जीवन से उनकी चर्बी बढ़ती ही जा रही है !

६६

'रूप रै कंवल मखमल आज,
बुढ़ापौ चंवरी चढ़तौ जाय।
भलां जोबन रो कांई जोर,
जदै आ बाड़ खेत ने खाय!

१००

'धूंधली अंबर खांखल मांझ,
नित नर नवी हूक भर जाय।
वेलता सपना बीतै रात,
प्रात नै सांझ अेक व्है जाय!

१०१

'चढ़ै जुग समदर री बौछाल,
जड़ां सूं ढावा ढहता जाय।
माचणां बणिया मगर बटाल,
सावती माछलियां गिट जाय!

● परम्परागत कुरीतियों की ओर संकेत करते हुए अन्त में सांझ ने व्यंजित किया कि औरतों का रूप और उनका यौवन तावीज की रखड़ियों व जादू - टोनों से बंदी बना हुआ है। बेचारा हृदय कुंठित बना रहता है। प्रताड़ना के थपेड़ों से वह हतप्रभ सा हो उठा है। और अभागिनियों की आँखों में ही सांझ ने हमेशा के लिये घर बना लिया है। उनकी असहाय दृष्टि को दिन के समय भी तारे टूटते दिखलाई पड़ते हैं। ● ● [मनुष्य, समाज का एक अविच्छिन्न सदस्य है — इसलिये कवि भी। समाज से दूर रह कर मनुष्य निरा पशु है।] दुनिया के साथ साथ स्वास - प्रश्वास लेने वाले कवि के हृदय में अकस्मात् एक शंका उभर आती है कि निसंदेह संध्या के प्राकृतिक रूप में अनिंद्य सुन्दरता है। दिन और रात का कितना अनुपम संयोग है — यह संध्या ! दुधारी बेला के योग से उसके सौंदर्य में सवाई वृद्धि हो गई है। संध्या के प्राकृतिक सौंदर्य का कई कवियों ने जी खोल कर वर्णन किया है। पर कवि संध्या के उस परम्परागत रूप वर्णन की उपमाओं के प्रति असमर्थता प्रगट करते हुए कहता है कि उसका हाथ ऐसा करने के लिये स्वतन्त्र नहीं है — युग के हाथों ने उसके हाथ को थाम लिया है। ● ● ● [कवि अपनी 'असमर्थता' के कारण बतलाता है :] भला सांझ तू ही बता कि मैं शराब की हलकी लाली से तुझे कैसे उपमा दूँ ? मेरा मन नहीं मानता। इस दुनिया में सौंदर्य - सुरा की खरीद बिक्री करने वाले कलाल [शराब के व्यापारी] भी तो कम नहीं बसते। वे सौंदर्य की शराब को खरीद बेचकर ही जीवन - यापन करते हैं।

१०२

'बंधियौ राखड़ियां में रूप,
बापड़ा हियां हिबोला खाय।
व्हैगी आंखड़ियां में सांझ,
दिनां में तारा तूटा जाय!'

* * *

सांझड़ी दीसै घणा रूपाल,
दुधारी वेला इदकी जाण।
वरणी कवियां दूणौ कोड,
अमीणौ पांण गह्यौ जुग पांण!

१०४

बता किम वरणूं थनै आज -
सुरा ची रंगत हलकी लाल?
जियै दुनिया में घणा कलाल -
रूप री दारू रा लेवाल!

● तेरी उपमा गुलाबी फूलों की वरमाला से देना भी अब कहाँ तक उचित है जब कि आज की दुनिया में उसका कोई महत्व ही नहीं है। अब तो विवाह - संबंध केवल घरानों का आपसी सौदा रह गया है। घर घर में अब विवाह का मतलब व्यवसायिक भाव - ताव के अन्यथा कुछ नहीं रह गया है। भारतीय संस्कृति का वह पानी अपनी राह आया और अब अपनी ही राह से बह निकल चला है। ● ● और यदि मैं मन मार कर भी तेरी उपमा सावन की तीजणी से दे डालूं तो वह सार - हीन है। तीजणी के शृंगार और सौंदर्य की कल्पना करना भी एक दुराशा मात्र है। वह तो आज भूख की साक्षात अध - नंगी मूर्त्ति के समान रह गई है। दुनिया के अन्य त्यौहारों तक की उसे सुध - बुध नहीं रही। ● ● ● हे सांझ ! तू ही बता कि ' प्यार की अरुणिम अभिव्यक्ति ' कह कर मैं कैसे तेरा झूठा बखान करूँ ? सही है कि अनुराग का रंग लाल माना गया है। तेरा भी रंग लाल है। पर इससे क्या ? कम से कम मैं तो इस उपमा से तुझे अलंकृत नहीं कर सकता। प्यार जैसी वस्तु ही इस दुनिया में कहाँ रह गई है ? मानव की वासनात्मक भौतिक - प्यास उसे तो कभी की सोख गई। पीछे बच रह गये हैं — केवल यौवन की क्षणिक उफान के प्रतीक — ये कोरे झाग !

१०५

बता किम वरणूं थनै आज -
गुलाबी फूलां री वरमाल ?
हमें तौ घर घर रो वोपार,
ढलग्यौ बो पांणी उण ढाल !

१०६

बता किम वरणूं थनै आज -
तीजणी सावण री मन मार ?
बा तौ आधी नागी भूख,
भूलगी धरती रा त्योंहार !

१०७

बता किम वरणूं थनै आज -
प्रीत रै पांणी रो रंग - राग ?
तिरसड़ी पीगी रहग्या लार,
उफणतै जोबनिये रा झाग !

● सांझ ! तुम यह भी निश्चय जानो कि नई उम्र का भोला सुहाग कह कर भी मैं तुझे सम्बोधित नहीं कर सकता । नहीं होती मुझ से किसी की मिथ्या स्तुति ! जब कि मुझ से छिपा नहीं है कि नई उम्र के इस भोले सुहाग की स्थिति तो काँटों के बीच घिरे हुए फूल के समान है । न जाने कब उसका पराग असमय में व्यर्थ ही मिट्टी में समाहित हो जाय ? ● ● और तो और 'मानव परम्परा का विकासोन्मुख दिव्य तेज' कह कर भी मैं तेरी खुशामद नहीं कर सकता । यह नगण्य चाटुकारिता पूर्ण उक्ति मेरे मुँह से भूल कर भी नहीं निकल सकती । क्योंकि मेरी आँखें साफ देख रही हैं कि चारों ओर अंधकार की सघन वृष्टि हो रही है । कुछ नहीं मालूम कि किस दिशा से प्रभात की स्वर्णिम - किरणें फैलेंगी ? और कब ? ● ● ●

[सारी कटोक्तियों को चुपचाप सुनने के बाद इस बार सांझ ने उत्तर दिया :] कि वह देखो - वह देखो इस रात्रि के विशालकाय श्यामल पर्वत के पीछे सुन्दर प्रभात हँस रहा है । कितनी सुन्दर और पवित्र हँसी है इसकी ! अपने भविष्य की सारी आशाओं को इस अन्यतम प्रभात के नये उजाले पर समर्पित कर दो । इसी दीपक की यही स्निग्ध लौ विश्व का पथ - निर्देश करेगी । इसी की आलोकमयी मुस्कराहट में मनुष्यता का अमर - संदेश अन्तर्हित है !

१०८

बता किम वरणूं थनै आज -
उमरड़ी भोली तणौ सुहाग ?
ओ तो काटा बिचलौ फूल,
झड़ै कुण जाणै कदै पराग ?

१०९

बता किम वरणूं थनै आज -
धरा री पीढ़ी रो परताप ?
बरसतै अंधारै रै मेंह,
कदै किण दिस होसी परभात ?

* * *

'रात रै काले डूंगर लार,
हँसै है रूपालौ परभात !
पलकती जग दिवलै री जोत,
मुलकती मिनख पणौ री जात !

● [अभी तो यह परिवर्तन काल है। पर इससे घबराने की कोई आवश्यकता नहीं :] यह काली नागिन सी रात। विकराल रूप। जहरीली फुफकारें। घोर अन्धेरा। प्रचंड झंझावात। भयभीत कोचरियों की व्याकुल फड़फड़ाहट। चीख। सौ सौ खंडों में टूट टूट कर गिरने वाले ये अगणित तारे। ● ● और : आंधी का यह भयंकर उत्पात। जड़ों तक चरमराते हुए वृक्ष। फरफराते हुए पत्ते। व्याकुल और सहमे हुए पक्षी। दिशा - शून्य। आंधी। आंधी। सर्वत्र आंधी। सनन् - सनन् करते हुए रेत के धोरे। पर्वतों की गर्जना। हाहाकार। भूकंप। एक महान् परिवर्तन में सारी व्यवस्था अस्त व्यस्त हो हो रही है। कुछ भी स्थिर नहीं। पुराने खेत स्वयं ही बन - बिगड़ रहे हैं। ● ● ● पर वह देखो – पूरब की ओर आकाश कुछ साफ होता सा दिखलाई पड़ रहा है। वह देखो – दूर पूरब में उगता हुआ प्रभाती तारा! अब यह सब कुछ शांत हो जायेगा। अन्धकार फटता सा नजर आ रहा है। आंधी शांत होती सी जान पड़ रही है। प्रचंड पवन अब अपनी ही स्वासों में संसार की आहें समेट रहा है। अन्धकार की परिधि प्रतिक्षण सिमिटती ही चली जा रही है।

१११

'हलफ़ती नागण काली रैण,
अंधारौ घोर पवन प्रचंड!
कूकती कोचरियां बेहाल,
तूटता तारां रा सौ खंड!

११२

'झपीड़ा सहणी रूंखां पांत,
पंखिया अकल-बकल अणचेत!
थपैड़ां थबकै डूंगर घोर,
वणौ ने उजड़ै जूनां खेत!

११३

'ऊगतै उण तारे परभात,
पड़ै ओ मोलो धूंधूंकार!
पवनियो सांसां में भर सांस,
सांवटै जग री काली कार!

● फिर सवेरे तो सब कुछ शांत हो जायेगा। प्रातःकाल के नये उजाले में कमलों से सजे पथ पर चलती हुई ऊषा आयेगी। विहँसती। अनुराग मयी आँखों में उसके प्रेम की अमिट लाली होगी। वही तो धड़कते हुए बेचैन हृदयों को सुख और सान्त्वना प्रदान करेगी। ● ● और: उस ऊषा की गोद में होगा — मनुष्य कुल का देदीप्यमान सूर्य। नया सवेरा। नयी ऊषा। नया सूरज। और उस नये सूरज की नयी किरणें। नया मनुष्य। नया जीवन। सब कुछ नवीन। और: उन नयी किरणों के नये धागों में जीवन के नये आदर्शों की कड़प [पांण] संचरित होगी!

११४

'बिहाणै पोयण पंथ पयाण,
उगूणी ऊषा धरती आय!
कसूंबल आंख्यां में भर राग,
धड़कता हिवड़ां ने हरखाय!

११५

'जिकण री गोद्यां में अणमोल,
हँसै है माणस कुल रो भांन!
किरण रा काचा धागा मांय,
संचरै जग री जीवण पाण!'

टिप्पणियां

[कुछ जातीयगत विशेषताओं का अतिरिक्त विवरण]

पद्य संख्या :

२ * **डाबर नैण** : राजस्थानी में 'डाबर' शब्द का अपना मतलब होता है – पानी से भरी हुई छोटी छोटी तलइयाँ। आँखों के लिये इस नई उपमा में एक विशेष पकड़ और एक विशेष समानता है। बड़ी, गहरी, आभायुक्त, गम्भीर, सुन्दर आँखों से जब किसी भी अन्य उपमा को योग्य नहीं समझा जाता तब उन्हें 'डाबर नैण' कह कर सम्बोधित किया जाता है। राजस्थानी लोकगीतों में अक्सर इसका प्रयोग मिलता है : 'डाबर नैणी रा जल्ला,
मिरगा नैणी रा जल्ला।'

५ * **कूंकूं पगल्या** : किसी के आगमन पर अतिरिक्त सम्मान, स्वागत, स्नेह और प्यार भावना को जब किसी भी बाह्य क्रिया द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता तब उस सम्बन्धित आत्मीयजन की 'उस चल कर आने की क्रिया को' 'कूंकूं पगल्या' कह कर व्यंजित किया जाता है। इसके साथ साथ पाँवों की सुकोमलता, उनका चिकनापन, उनकी ललाई भी व्यक्त होती है। लोकगीतों में भी इसका प्रयोग हुआ है : 'कूंकूं रै पगल्यां पधारो म्हांरा राज।'

३१ * **पड़ जांन** : दूल्हे के साथ की बरात का राजस्थानी शब्द है 'जांन'। और गाँव की सीमा पर दुलहिन की ओर से बरातियों के स्वागतार्थ जाने का एक रिवाज सा है। वधू-पक्ष की ओर से आने वाले इन व्यक्तियों को ही 'पड़ जांनी' कहा जाता है।

३३ * **मोद सूं मूमल – रूप सराय** : 'मूमल' राजस्थानी का एक बहुत ही जन-प्रिय और प्रसिद्ध लोकगीत है। इसमें मूमल [नायिका का नाम] का नख-शिख वर्णन है। अत्यधिक सुन्दर, सूक्ष्म और कलात्मक। मूमल के सौंदर्य-वर्णन की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:

सीसड़लो मूमल रो बागड़िये नालेर ज्यूं ....
हे बेणी तो मूमल री बासक नाग ज्यूं ....
नाकड़लो मूमल रो खांडण्यै री धार ज्यूं ....
हां जी रै आंखड़ल्यां रंग भीनी री रतनालियां ....
होठड़ला मूमल रा रेसमिये रै तार ज्यूं ....
हां जी रै दांतड़ला मूमल रा दाड़मिये रा बीज ....
पेटड़लो मूमल रो पीपलिये रा पांन ज्यूं ....
हां जी रै हिवड़लो मूमल रो सांचे ढालियो ....

शाम के समय सभी कामों से निवृत्त होकर गाँव की ओर आते हुए राहगीर अक्सर मस्ती के साथ 'मूमल' गीत गाया करते हैं। गीत का आलाप लेते समय वे इतने तन्मय हो जाते हैं कि जैसे वे ही पहली बार मूमल के सौंदर्य की सराहना कर रहे हों। जैसे यह गीत स्वयं उन्हीं का बनाया हुआ हो।

६१ * **लागी पगै सुहागण भूख** : राजस्थान के गाँवों में यह रिवाज एक विशेष तौर पर प्रचलित है कि बहू अपनी बड़ी औरतों के

पाँवों में झुक कर, अपने हाथों से सम्मानित व्यक्ति के पाँवों का स्पर्श करके, सिर नवा कर उसे प्राप्य सम्मान दिया करती है। बहू की ओर से प्रेषित इस किया को 'पगै लागणां' कहते हैं। इस पद्य में गृह-स्वामिनी के पैर छू कर उसकी अभ्यर्थना करने वाली 'अमर-सुहागिन-भूख' को इसी प्रसंग वश चित्रित किया गया है कि—'लागी पगै सुहागण भूख।'

९९ * **चंवरी चढ़णौ** : विवाह-संस्कार की कियाएँ जिस स्थल विशेष पर नियोजित की जाती हैं— उसे 'चंवरी' कहते हैं। और उसके निमित्त सम्पन्न किये जाने वाले कार्य-कलापों को 'चंवरी-चढ़ना' कहा जाता है।

९९ * **बाड़ खेत ने खाय** : फसल की रक्षा करने के हेतु खेत के चारों ओर काँटों की बाड़ लगाई जाती है। और : यदि बाड़ ही खेत को खाना आरम्भ करदे तो फिर रक्षा का चारा ही क्या? जब निकटतम आत्मीय-जन कभी नुक्सान करने पर उतारू हो जाते हैं तब इस कहावत का प्रयोग किया जाता है कि बाड़ खेत को खा रही है।

१०२ * **बंधियौ राखड़ियां में रूप** : सामाजिक कुरीतियों से उत्पन्न [अनमेल विवाह, वृद्ध विवाह, दहेज प्रथा के कारण आजन्म विवाह का न होना, इत्यादि] औरतों की बीमारियों को नासमझी के कारण देवी देवताओं का प्रकोप मान कर उनका वैसा ही उपचार करवाया जाता है— जैसे जादू-टोना, मन्त्र, ताबीज, रखड़ी आदि। ताबीज या रखड़ी को बाजू या गले में काले डोरे से बाँध दिया जाता है। इसी आशय से इस पद्य में प्रसंग वश कहा गया

है कि उन अभागी रूपवती बालाओं का यौवन और सौंदर्य राखड़ियों में बँध कर कुंठित हो गया है।

१०६ * **सांवण री तीजणी** : सावन की तीज [तृतिया] राजस्थान का एक महत्वपूर्ण त्यौंहार है – विशेषतया गाँवों का। बड़ा आनन्द उत्सव मनाया जाता है। बहुएँ नये वेश पहनती हैं – गहने पहनती हैं – झूले झूलती हैं। तीज का यह उत्सव मनाने वाली ये कुल - बहुएँ 'सावन की तीजणियां' कहलाती हैं।

'सांझ' में प्रयुक्त राजस्थानी के शब्द

अ

अकल बकल : अत्यंत व्याकुल
अड़वड़ जाय : हड़बड़ा उठती हैं
अचपली : चपल
अचांणी : अचानक
अजकणां : उद्यत
अजकाय : उद्यत होकर
अजांणी : अनजान
अटकाय : अटका कर
अडोली : विलंकृत
अणगिण : अगणित
अणचेत : अचेत
अणबोली : मौन
अणमणौ : अनमना
अंबक : आँख
अमीणौ : मेरा
अरक : सूर्य
अलगा : दूर
अलेख : असंख्य
अलेखां : असंख्य
असमांनी : नीला
अंवेर : देख भाल

आ

आखै : सम्पूर्ण
आगमै : आगमन
आगूंच : आगे
आघौ : दूर
आडै : टेढ़े
आथूंणी : पश्चिमी
आपणी : अपनी
आपौ : अपनत्व
आभौ : आकाश

इ, ई

इकलांण : एकांत
इदकी : असाधारण
ईंढ़ाणी : ईंढुरी

उ, ऊ

उगूणी	:	पूरब से
उगेरै	:	आरम्भ करती हैं
उजड़ै	:	उजड़ते हैं
उजास	:	उजाला
उडगण	:	तारे
उडाई	:	उड़ाई
उणिहार	:	समान
उणी	:	उसी
उफणतै	:	उफनते हुए
उरसां	:	आकाश
ऊगै	:	उगता है
ऊमलै	:	छलकता है
ऊभा	:	खड़े हैं
ऊंगीज	:	निद्रित
ऊंठड़ा	:	ऊंट

ओ, ओ

ओवड़	:	रेवड़
ओगनियां	:	कर्ण फूल
ओसरियो	:	बरसा
ओलूं	:	याद

कठैक	:	कहीं कहीं
कद	:	कब
कदैक	:	कभी कभी
कलपती	:	कलपती हुई
कलपियौ	:	कलपा
कलाल	:	कलाल
कलाव	:	पंख फैलाना
कसूंबल	:	लाल
काचा		कच्चे
काछबियो	:	गीत विशेष
काजलिया	:	श्यामल
किण	:	किस
कितरौ	:	कितना
किम	:	कैसे
किरत्यां	:	तारिकाएँ विशेष
कुणसी	:	कौन सी
कुमेत	:	घोड़ी विशेष
कुरलाय	:	चीत्कार करके
कूंडालै में	:	गोलाकार परिधि में
कूंपलौ	:	काजल दानी
केहि	:	किस
कै	:	या
कोचरी	:	पत्नी विशेष
कोड	:	उत्साह
कोट	:	गढ़
कंवल	:	कमल

कंवली : कोमल
कांई : क्या

ख

खंख : झीनी धूल
खांखल : गोधूली
खितिज : क्षितिज
खीण : क्षीण
खुड़कै : पैरों की आवाज
खोल : आंचल
खोलै : गोद में

ग

गमजाय : खो जाते हैं
गिणिया : थोड़े से
गिट जाय : निगल जाते हैं
गुणतां : मनन करने पर
गुदलती : धूमिल
गेरी : पत्नी विशेष
गैण : नभ
गोट : किनार

घ

घण : बहुत
घण : बादल
घुलै : घुलता है
घूघू : उल्लू

घूमर : नृत्य विशेष

च

चकचोल : चपलता
चख : चक्षु
चरै : चरते हैं
चलापल : चमकती हुई
चा : का
चानणौ : प्रकाश
चांचां : चोंचें
चिलकै : चिलकते हैं
ची : की
चुभाणां : चुभै
चूंधीज्या : चकाचौंध
चैचाट : चहचहाहट
चो : को
चोखी : अच्छी
चौफेर : चारों ओर

छ

छबछबीली : छबकाली
छलकै : छलकता है
छेहड़े : ओढ़नी के किनारे

ज

जगा : जगाणौ
यजमान : जजमांन

जलमिया	:	जनमे	टाल़ौ	:	छाँट लो
जल़हर	:	जलधर	टुकिया	:	कंचुकी का अग्रिम
जाण	:	जान कर			भाग
जांझ	:	पायल	टुल़किया	:	रवाना हुए
जिकण में	:	जिसमें	टेपा	:	नीचे को
जिण	:	जिस		ठ, ड, ढ	
जुड़ंतां	:	जुड़ने पर	ठाडौल़	:	ठंडक
जूण	:	मनुष्य योनि	ठंबियौ	:	ठहरा
जूं तै		संघर्ष रत	डागल़ै	:	छत पर
जोबरली	:	असाधारण	डाबर	:	तलैय्या
जोवतां	:	देखने पर	डीगौड़ा	:	ऊंचा
	झ		डूंगर	:	पर्वत
झड़ै	:	झड़ते हैं	ढलिया	:	ढले
झपीड़ा	:	झपेटे	ढूल	:	चिड़ियों का झुरड
झपै	:	झपकती है	ढावा	:	किनारों का ऊपरी
झाड़कां	:	झाड़ियों में			भाग
झाल़	:	ज्वाला		त	
झांखै	:	देखते हैं	तणौ	:	का
झांपै	:	पकड़ती है	तांई	:	तक
झीणौ	:	झीना	तांबाड़	:	बछड़ों का रम्भाना
झुरकै	:	चाल विशेष	तिरसड़ी	:	प्यास
	ट		तिरै	:	तैरते हैं
टाबरियां	:	बच्चों ने	तीखा	:	तीक्ष्ण
टाल़तां	:	टालते समय	तूटा	:	टूटे

थ

थन्नै : तुझे
थपेड़ां : थपेड़ों से
थाकी : थकी
थाकेल्लौ : थकान
थाग : थाह
थांन : देव - स्थान
थांसूं : तुझ से

द

दई : दी
दाकलै : जोर से हल्ला करना
दाझतै : दग्ध
दारू : शराब
दिवल्लौ : दीपक
दिसदी : दिशा
दीह : दिन
दूणै : दुगने
दूवण : दुहने को
देवत नैण : देवताओं के नयन
दोरो : मुश्किल

ध

धण : स्त्री
धवल : श्वेत
धाव : मनन

धिवड़ियां : लड़कियाँ
धुपै : घुलता है
धूणतै : हिलाते हुए
धूणी : धूनी
धूंधली : धुंधली
धोरां : टीलों में
धोरिया : टीबे

न

णणदल : ननद
नटी : इन्कार किया
नवोढ़ो : नवीन
नस : गर्दन
नागण : नागिन
नांख : डाल कर
निमै : नवता है
निरखवा : देखने के लिये
ने : को
नै : और
नैनकड़ी : छोटी

प

पगल्या : पैर
पयंपै : कहते हैं
पयाण : चल कर
परखवा : परखने को

परणती	:	शादी करती हुई	बंधाणौ	:	बंधा हुआ
पंखिया	:	पक्षी	बनड़ी	:	दुलहिन
पाछौ	:	वापिस	बनी	:	दुलहिन
पाथरै	:	परत जमाना	बलूखड़ी	:	कपास
पांण	:	हाथ	बसतौड़ी	:	बसती हुई
पांण	:	कल्प	बापड़ा	:	बेचारा
पांण	:	सहारे	बाळापण	:	बचपन
पिलांण	:	ऊँट की जीन	बालूड़ौ	:	बच्चा
पीगी	:	पी गई	बायरिया	:	पवन
पीळीजी	:	पीली पड़ी हुई	बिचाळै	:	बीच ही में
पुणचौ	:	कलाई	बिछगी	:	बिछ गई
पुळ	:	वेला	बिताणी	:	बीती
पूगण रो	:	पहुँचने का	बिताणौ	:	बीता
पूंख	:	सिट्टे	बिरछै	:	वृक्ष की
पोयण	:	कमल	बिरलै	:	असाधारण
पौढगी	:	सो गई	बिलारै	:	रिरियाते हैं
	फ		बिसरांम	:	विश्राम
फाळ	:	फाल	बिहाणै	:	सवेरे
फिळै में	:	फलसे में	बिहारै	:	बिहार करती है
फुरणी	:	नथुने	बिहि	:	विधि
	ब		बिखरै	:	बिखरती हैं
बटाऊ	:	बटोही	बींद	:	दुल्हा
बटाळ	:	नृशंस	बे	:	वे
बधै	:	बढ़ते हैं	बेछौळ	:	शांत

बेहोंनी	:	पौधा विशेष	मनचींती	:	मन चाही
बैन	:	बहिन	मयंक	:	चन्द्रमा
बैरण	:	बैरिन	माचणां	:	मोटे
बो	:	वह	माणस	:	मनुष्य
बोकारै	:	चुनौती देते हैं	मालां	:	मचान पर
बौछाल़	:	हिलोर	मावड़ी	:	मां
	भ		मांझ	:	में
भरतार	:	पति	मांडै	:	रचते हैं
भरांणा	:	भर गये	मिजमांन	:	मेहमान
भाज	:	भाग कर	मिरगलौ	:	मृग के
भांन	:	सूर्य	मीट	:	दृष्टि
भांमण	:	भामिनी	मींच	:	बंद करके
भींजै	:	भींगती है	मींडलियां	:	बालों की लटें
भुलाणी	:	भूल गई	मुधरौ	:	मंद
भेख	:	भेष-रूप	मुधारौ	:	झुटपुटा
भेल़	:	मिलाया	मुल़कता	:	मुस्कराते हुए
भोगण हार	:	भोगने वाले	मेल़	:	मिलन
भोपणा	:	भौंहे	मेल़ाप	:	मिलाप
भोल़	:	भोलापन	मोल़ौ	:	हलका
	म			र	
मगर	:	मगरमच्छ	रणवास	:	रनिवास
मगसी	:	मलीन	रसा	:	पृथ्वी
मजीठ	:	मजीष्ठ	रसाल़	:	भेंट
मनड़ै रो	:	मन का	रंगरजवो	:	रंगरेज

रंगाणा	:	रंगे हुए	वरणी	:	वर्णन किया
राच्यौ	:	सराबोर	वरणूं	:	वर्णन करूँ
रातड़ली	:	रात	वारणा	:	बलैयाँ
रातौ	:	लाल	वाला	:	बाला
रातोड़	:	ललाई	वाव	:	पवन
रिमझोलां	:	नूपुर	विणजारो	:	बनजारा
री	:	की	वीर	:	भाई
रीझी	:	रीझ गई	वीरो	:	भाई
रूपाली	:	रूप-वान	वेलतां	:	बड़बड़ाते
रोही	:	जंगल	वोपार	:	व्यापार

ल **स**

लांठ	:	झुण्ड	सरावै	:	सराहना करते हैं
लिलाड़	:	ललाट	सहणी	:	सहने वाली
लीधौ	:	लिया	संचरै	:	संचारित करता है
लीलाण	:	हरियाली	सागेई	:	वही
लीली	:	हरी	साथंण	:	साथिन
लुकावै	:	छिपाती है	साबती	:	सम्पूर्ण
लूंबां-झड़	:	निरंतर झड़ी	सायधण	:	स्त्री
लूंबै	:	झूमता है	सांकड़ै	:	संकड़े

व

वणै	:	बनता है	सांच्यौ	:	सौंपा
वलिया	:	लौटे	सांम्ही	:	सामने
वली	:	लौटी	सांयत	:	शांति
वणाव	:	शृंगार	सांवटै	:	समेटता है

सिकै	:	सिकती है		ह	
सिखरां	:	मध्यान	हबोला खाय	:	अत्यन्त व्याकुल
सिणगार	:	शृंगार	हलूस	:	उत्साह
सिधायो	:	गया	हन्दा	:	का
सुगन चिड़ी	:	पक्षी विशेष	हंसला	:	हंस
सुगाल्	:	सुकाल	हाट	:	बाजार
सुरा ची	:	शराब की	हाली		चली
सींरोल्	:	साजे का	हिये	:	हृदय में
सून्याड़	:	सूना पन	हींचता	:	प्रयत्नशील
सेवट	:	आखिर	हींडणा	:	झूलना
सेलांणी	:	निशानी	हींडा	:	झूला
सैण	:	आत्मीय	हेकल	:	अकेला
सोधवा	:	ढूंढ़ने को	होसी	:	होगा

मेघदूत का हिन्दी में अपूर्व स्वागत

कुछ सम्मतियाँ

नया समाज
कलकत्ता

* हिन्दी में यह एक अनूठा और स्पृहणीय प्रयास है।

डॉ. रघुवीरसिंह
सीतामऊ

* नारायणसिंह भाटी कृत मेघदूत का राजस्थानी अनुवाद सचमुच बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है।

डॉ. रामविलास
आगरा

* मेघदूत का अनुवाद देखा बहुत ही पसन्द आया।

डॉ. देवराज
लखनऊ

* मेघदूत तो एकदम अनूठा प्रयास है।

प्रो. कन्हैयालाल
पिलानी

* मेघदूत का राजस्थानी अनुवाद अपने ढंग की अद्वितीय वस्तु है।

प्रो. विनयमोहन
नागपुर

* राजस्थानी भाषा में मेघदूत का माधुर्य सुरक्षित रह सका – यह उसकी क्षमता का द्योतक है।

श्यामू सन्यासी
इलाहबाद

* मेघदूत की कल्पना कमाल की है। फिर शिष्ट-मिष्ट राजस्थानी में अनुवाद का तो कहना ही क्या ? नारायण जी की कलम चूमने को जी चाहता है। उनकी सांझ [प्रेरणा में] देख कर तन्मय हुआ था – यह अनुवाद देखकर उछल पड़ा।

* मेघदूत तो अपने ढंग का सर्वथा निराला है। जब तक प्रान्तीय भाषाओं की भाव-निधि आलोड़न की सहज प्रक्रिया में परस्पर घुलमिल न जायेगी तब तक भावी राष्ट्र-भाषा के उपकरण संश्लिष्टत्व न प्राप्त कर सकेंगे। इस नैष्ठिक सृजनात्मक संचरण के प्रति मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिये।

प्रो. शिवमंगलसिंह
उज्जैन

* अनुवाद बहुत सफल हुआ है। अनुवाद ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि राजस्थानी भाषा में कोमल भावों को व्यक्त करने की असीम क्षमता है।

शिक्षा व मनोविज्ञान
बीकानेर

* मेघदूत के इस राजस्थानी अनुवाद में कालीदास एक बार फिर जी उठा है। अनुवादक नारायणसिंह भाटी की प्रतिभा और राजस्थानी भाषा की अतुलनीय क्षमता का ही यह परिणाम है। मेघदूत को पढ़कर मेरा बुढ़ापा सफल हो उठा,

श्री उदयराज उज्वल
जोधपुर

* अनुवाद में सर्वत्र प्रवाह है। कुछ पंक्तियाँ तो लोकोक्तियाँ का रूप धारण करने की क्षमता रखती हैं। और हम सम्पादक [कोमल कोठारी] के इस कथन से सहमत हैं कि इस अनुवाद का श्रेय नारायणसिंह जी को तो है ही किन्तु इसके साथ उस महान भाषा को भी जिसमें ये कोमलतम भाव विकसित हो सके।

अजन्ता
हैदराबाद दक्षिण

मेघदूत

राजस्थानी - पद्य में कालीदास की अमर कृति 'मेघदूत' का सफल अनुवाद

* * राजस्थानी अनुवाद के साथ साथ विश्व - कवि रविन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा रचित मेघदूत पर कविता और लेख, यक्ष का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण व अन्य आलोचनात्मक लेख भी हैं। मेघदूत की काव्य - महिमा को समझने में ये लेख बहुत ही आवश्यक हैं।

* * संस्कृत मूल - काव्य और भावपूर्ण हिन्दी में उसका गद्यानुवाद।

अनुवादक : नारायण सिंह भाटी

मूल्य : दो रुपये, सजिल्द

मेघदूत का द्वितीय संस्करण

शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है

पीथल प्रकासण, जोधपुर

पोस्ट बॉक्स नम्बर.....